रामाश्रम सत्संग (रजि०) प्रकाशन

संत-प्रसादी

(भाग-२)

परम संत डॉक्टर करतार सिंह साहब

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाजियाबाद (उ० प्र०)

विषय सूची

क्र० सं०

1. दो शब्द

2. करनी कथनी और रहनी

3. चित्त को शुद्ध कर सत्संग के शिक्षक वर्ग के लिए चेतावनी

4. परमात्मा के प्रति सच्चा जिज्ञासा होना चाहिए

5. मुंह और आसक्ति को तोड़ना चाहिए

6. साधना में शरीर और मन स्वस्थ होनी चाहिए

7. माया से बच कर रहे हैं

8. इच्छाओं को कम करो

9. सर संतोष विचार और शांति आत्मा को स्वतंत्र बनाने की तैयारी कैसे करें

10.पवित्रता निर्मलता एवं सरलता के बिना आत्मिक उन्नति नहीं होती है

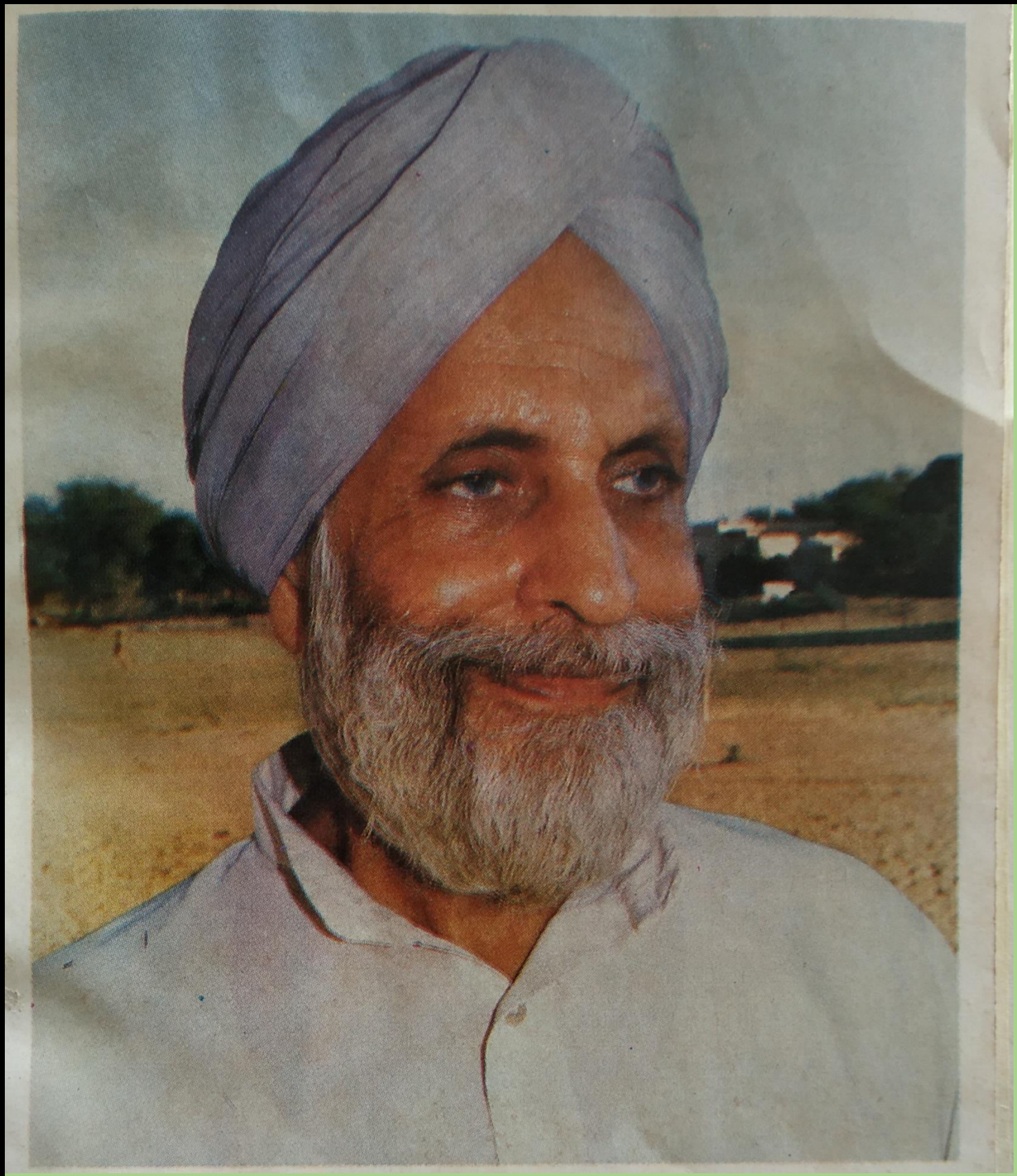

" अहंकार से प्रभु नहीं मिलते । चाहे कोई भी साधन करिए, दीनता को तो अपनाना हीं होगा "।

परम संत डॉ० करतार सिंह साहब

(जन्म 13 जून 1912)

दो शब्द

संत-मत के रामाश्रम सत्संग की वर्तमान आचार्य परंपरा में भाई साहब परम संत डॉक्टर करतार सिंह साहब (दिल्ली निवासी) का संक्षिप्त परिचय संत प्रसादी के भाग (१) में आ चुका है । उनके प्रवचनों के संकलन का यह दूसरा भाग ईश्वर प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत है । पूज्य भाई साहब ने आंतरिक अभ्यास के साथ साथ नाम और Character Formation (आचरण की शुद्धि) पर विशेष रूप से बल दिया है । नाम क्या है ? यह उनके प्रवचनों में उन्होंने सरलतम भाषा में विस्तार से समझाया है । प्रेमी जन कृपया उन प्रवचनों को ध्यानपूर्वक पढ़ें, उन पर मनन करें और उनका उपयोग अपने व्यावहारिक जीवन में करें । आशा है कि ऐसा करने से उनके परमार्थी जीवन में यथेष्ट लाभ होगा ।

भविष्य में संत प्रसादी के और भी कई भाग प्रेमी भाइयों की सेवा में प्रस्तुत किए जा सकेंगे ऐसी आशा है ।

गाजियाबाद

दिनांक १४ अगस्त १९८७

दासानुदास

-------**महेश चन्द्र**

(१)

करनी कथनी और रहनी

इलाहाबाद, दि० २१-१-८२

ईश्वर के रास्ते पर चलने वालों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि रास्ता क्लबों में जाने काया अन्य संसारिक आनंद प्राप्ति के जो स्थान है, वैसा रास्ता नहीं है । इस रास्ते पर उसे चलना है जिसे पता है कि उसके जीवन का लक्ष्य क्या है ? जीवन का लक्ष्य किस तरह प्राप्त होता है ? जिनको यही पता नहीं कि ईश्वर कौन है ? ईश्वर की प्राप्ति कैसे होती है ? वह अपना जीवन कैसे बनाएगा ? वह ईश्वर की प्राप्ति की अभीप्सा भी रखें, चाह भी रहे, एवं माया में फंसा रहे तो काम नहीं चलेगा । अधिकांश लोग माया में फंसे हैं, परमात्मा का नाम तो Routine (दिनचर्या) के तौर पर या कला के तौर पर लेते हैं । वास्तविकता को हम नहीं समझते और ईश्वर प्राप्ति के लिए गंभीर नहीं है । दृढ़ संकल्प नहीं है और यदि दृढ़ संकल्प हो जाए तो हमसे बुराई भलाई नहीं हो सकती । हम वही कर्म करेंग जिनके करने से हमारे प्रीतम प्रसन्न हो । इस रास्ते पर चलने वालों को अपना आचरण बहुत ऊंचा बनाना पड़ता है । उनकी करनी, कथनी और रहनी में Harmony (संतुलन) होगा । वह कहता कुछ है यानि ऊँचे ऊँचे आदर्शों की बातें करता है परंतु उसकी वाणी में कठोरता निकलती है, दूसरे को दुःख पहुंचाती है, उसमें लचक नहीं है दीनता नहीं है, हठ है । इस तरह के व्यवहार में भी शोषण है । उसके व्यवहार से दूसरे को दुःख पहुंचता है तो ऐसा व्यक्ति परमार्थ का अधिकारी नहीं है परमार्थ का अधिकारी नहीं है । परमार्थ में ईश्वर प्राप्ति या ईश्वर दर्शन के लिए अधिकार प्राप्त करना होगा । कबीर साहब कहते हैं जिसकी रहनी शास्त्र के अनुसार है गुरु के आदेश के अनुसार हैं वाणी उसी के अनुसार है और विचार भी वैसे ही हैं वह हमारे संबंधी हो सकते हैं । वह हमारे प्रिय हो सकते हैं । गुरुगोविंद सिंह जी ने भी लिखा है कि मुझे सिक्ख (शिष्य) प्यारा नहीं,उसकी रहनी मुझे प्रिय है सब महापुरुषों ने इसी को महत्व दिया है परन्तु इस वक्त उल्टा हो रहा है, न तो हमारी कथनी में सत्यता है और मधुरता है, न करनी में यानी दूसरों के सुख में सुख नहीं देखते हैं । यही गीता का सार है कि जो कुछ हम करें सब के हित के लिए हो और वह भी निष्काम भाव से हो । हम देखते हैं कि ऐसा कोई नहीं करता है ।

जिससे बात करो, वही कहता है कि करें क्या ? संसार में कुछ ऐसा अनाचार फैला हुआ है जिसके कारण हम मजबूर हैं । जैसे दफ्तर में सब ओर रिश्वत चलती हैं और हम रिश्वत न लें तो हम वहां नहीं ठहर सकते हैं, दफ्तर वाले तंग कर देते हैं । जिसके मुख से ऐसी बातें निकलती है या तो उसे इस माया के साथ बह जाना चाहिए और यदि उसे परमार्थ की प्राप्ति करनी है तो उसको वहां से छोड़ देना चाहिए । यह कायरता की बातें हैं कि संसार में ऐसा हो रहा है तो मैं क्यों न करूँ, मेरा रहना ठीक हो जाएगा । फिर तो माया प्राप्त हो सकती है, ईश्वर प्राप्त नहीं हो सकता । यह बड़ी अच्छी तरह समझ लेना चाहिए । इसके लिए जो महात्मा बुद्ध ने नींव रखी है वह है 'शील साधना' ऐसे कर्म करना, ऐसी वाणी बोलना है, जिससे भीतर में शांति उत्पन्न हो । शील का मतलब 'शान्ति' । बीस-बीस साल तक बौद्ध धर्म का अनुयायी अपने मन को शांत करने की साधना करते हैं । जैसे हमारे यम और नियम है (सत्य बोलना, अहिंसा पर बल है, ब्रह्मचर्य, अधिक पैसा इकट्ठा न करना इत्यादि) बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस साल तक जब तक यह संतुष्टि नहीं हो जाती है कि अनुयायी के मन में शांति हो गई है, उसके भीतर में सत्य बस गया है, संतोषी है (क्योंकि बिना संतोष के भीतर में शांति नहीं हो सकती) और उसमें बलिदान करने का यज्ञ करने का भाव पैदा हो गया है तब कहीं जाकर बौद्धमत की साधना का रास्ता बतलाया जाता है ।

यह किसी एक के हित के लिए नहीं है । यदि किसी को परमात्मा की प्राप्ति करनी है तो उसको यह करना ही होगा कि उसकी वाणी में मधुरता हो, व्यवहार शुद्ध हो, प्रेम मय हो, आनंदमय हो, मंगलमय हो, अपने लिए नहीं दूसरों के लिए पहले । पहले दूसरों को सुख पहुंचाएंगे दूसरों को शांति पहुंचाएंगे दूसरों को आनंद देंगे, तब हमें सुख शांति का अनुभव होगा । इसी प्रकार हमारी रहनी घर में, दफ्तर में, लोगों के साथ, उन्हीं आदर्शों के अनुसार होगी तब हम अधिकारी बनेंगे ।

पुराने जमाने में गुरुजन तुरंत दीक्षा नहीं देते थे, बीस-बीस साल बर्तन साफ कराते थे, सेवा कराते थे, जब साधक का मन बिल्कुल मोम की तरह मुलायम हो जाता था तनिक भी उसके भीतर में कठोरता नहीं रहती थी, दीनता, गरीबी, उसके स्वभाव में आ जाते थे, तब दीक्षा मिलती थी । गुरुबाणी में लिखा है कि बुद्धि बड़ी तीव्र है परंतु ऐसा व्यक्ति अपने आपको अबोध समझता है और व्यवहार भी वैसा ही करता है । शक्ति होते हुए भी वह व्यक्ति अपने आपको हीन समझता है, वह उसी तरह का व्यवहार करता है । शक्ति का मतलब है

शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, आर्थिक शक्ति, और बौद्धिक शक्ति, चारों प्रकार की शक्तियां होने के बावजूद भी वह व्यक्ति अपने आपको शक्ति हीन समझता है । सर्वस्व सम्पन्न होते हुए भी वह अपने आपको कुछ भी नहीं समझता क्योंकि परमात्मा की तुलना में आदमी है ही क्या ? अपने पास कुछ नहीं था तब भी कबीर साहब कपड़ा बुन कर और बेंच कर जो कमाते थे उनका आधा गरीबों को बांट देते थे । सभी महापुरुषों ने ऐसा किया है । ऐसा कोई गुरुमुख संत बिरला होता है सब कुछ होते हुए भी वह कहता है **मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तुज्झ** यानी मोह मुक्त होता है, यानि राग द्वेष में फंसा हुआ नहीं होता । यह बातें सिर्फ आदर्श के लिए, नारेबाजी के लिए न हो, वास्तविकता हो, हमारा जीवन दीनता का हो ।

प्रभु को दीनता प्रिय है । यह मित्रता का व्यवहार केवल उनके साथ न हो जो हम से बलवान है, नहीं, सबके साथ एक जैसा, जैसे परमात्मा एक जैसे व्यवहार सब के साथ करता है, एक जैसा पालन-पोषण करता हैं, सबको प्रेम प्रदान करता हैं,सबको आनंद देता है उसी तरह जिज्ञासु को भी इन गुणों का प्रतीक बनना होगा 'Embodiment of these qualities' ऐसी रहनी सहनी वाले को कबीर साहब अपना गुरु समझते हैं । बड़ा कठिन है । माया के प्रवाह में रहते हुए अपने आप को अछूता रखना कठिन है, परंतु इसके बिना यह रास्ता सरल नहीं होता है । आध्यात्मिकता प्राप्त नहीं होती । Technique (कला) तो आ जाएगी परंतु सरलता, कोमलता, नहीं आ सकती । बुद्धि की चतुराई को छोड़ना होगा, मन की चंचलता को छोड़ना होगा । भगवान शिव के सम्मुख बैठे नंदी बैल की तरह बनना होगा । कितनी सरलता है उस पशु में । हम सिद्धांतों को खूब समझते हैं, पर परन्तु जीवन में नहीं लाते हैं । 'सत्य' बोलो सभी कहते हैं, बच्चा बच्चा कहता है परन्तु युधिष्ठिर छह महीने द्रोणाचार्य जी से मार खाते रहे परन्तु कहते हैं कि सत्य का सबक याद नहीं हुआ । छह महीने हो गए तो द्रोणाचार्य जी कहने लगे कि बात क्या है, मामूली से दो शब्द कहे हैं 'सत्य बोलो' ये क्यों नहीं इसे याद होते । पूछा गया तो करबद्ध कहने लगे कि ठीक है आपका कहना 'सत्य बोलो' लेकिन मेरा जीवन अभी सत्य का हुआ नहीं है, मै आपको कैसे कह दूँ कि मुझे सबक याद हो गया । कहने का मतलब यह है कि सिद्धांत कुछ और है और practical (व्यावहारिक) जीवन कुछ और है । तो इस रास्ते पर चलने वाले को practical (व्यवहार कुशल) बनना होगा, सिद्धांतों को जीवन में ढालना होगा और इन सिद्धांतों को अप्रयास व्यवहार में विकसित होने देना होगा । सत्य का सिद्धांत तो है परन्तु व्यवहार में सत्यता नहीं प्रकट होती है तो हमने सिद्धांतों को समझा ही नहीं । वास्तव में यही साधना है । यदि हमारी कथनी कहनी व रहनी शुद्ध हो जाते है तो मन की एकाग्रता

(या उससे आगे मन की एकता) यह बड़ी आसानी से हो जाता । परन्तु इस तरफ हम ध्यान नहीं देते हैं । मैं बार बार कहा करता हूँ कि हमें संतीं की वाणी और गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी) के जो प्रवचन हैं उन पर मनन करना चाहिए । जैसे यही प्रवचन है जो पढ़ा जा रहा है (संत वचन भाग २ , पृष्ठ ३७) इसे बार बार पढिये फिर अपने आप से पूछिये कि हम कहाँ खड़े हैं, हम आदेशों का कितना पालन कर रहे हैं ? क्या हम गुरु के नाम को बदनाम कर रहें हैं या हम गुरु के नाम को बढ़ा रहे हैं ? गुरु का नाम कैसे बढ़ता है ? जब हमारा जीवन गुरु के आदेशों के अनुसार होगा तो सभी प्रभावित होंगे । यदि हम सत्संग में जाते हैं और सत्संगी कहलाते हैं और हमारा व्यवहार साधारण व्यक्तियों से भी गिरा हुआ है तो लोग कहेंगे कि जिस सत्संग में यह जाते हैं तो जैसे यह है वैसा हीं इनका सत्संग होगा । गुरु के नाम को बदनाम करते हैं । इसलिए इन तीनों बातों पर मनन करना चाहिए - 'कथनी' करनी' और रहनी' । तीनों को खूब विचारना चाहिए । बातों बातों में आनन्द नहीं लेना चाहिए, practical (व्यवहारिक) रूप में इनको अपने जीवन में लाना चाहिए । यदि गुरु या इश्वर के प्रति सच्चा प्रेम है, उनके प्रति भाव या भय है तो आपसे कोई गुनाह हो हीं नहीं सकता । भले हीं आपके सांसारिक सुखों की कमी हो जाए , नुक्सान हो जाये , परन्तु कोई बात आप ऐसी नहीं करेंगे जो गुरु के आदेशों के प्रतिकूल हो । वही करेंगे जिनमे उनको प्रसन्नता होती है । लोगों ने राजपाट इसलिए छोड़ दिए । भरत जी चक्रवर्ती राजा थे, उन्होंने सारा राजपाट छोड़ दिया है । राजा हरीश चन्द्र ने सबकुछ न्योछावर कर दिया है एक सत्य बोलने के लिए । केवल सत्य का व्यवहार करने के लिए भगवन राम ने जो वायदा किया है उसे पूरा किया है । कौन पुत्र है जो इतना कष्ट उठाएगा परन्तु यह करनी है , रहनी है । चौदह साल पिता के लिए बनवास में गये है । इसी प्रकार भीष्म पितामह ने अपने पिता के लिए किया है । तो ऐसे हीं लोग सितारों की तरह चमकते हैं । उनका नाम हमेशा इतिहास में रहेगा । ये रास्ता वीरों का है । यह कमजोरों का रास्ता नहीं है जो यह कहता है कि मैं पैसा भी कमाऊं, नाम भी कमाऊं और परमात्मा के रस्ते पर भी चलूँ , मुझे कुछ कठिनाई न आये, कोई दुःख न आये , सुख हीं सुख मिलता रहे और जो कुछ हो रहा है चाहे उसके हित के लिए हो रहा हो तब भी वह सुख को हीं चाहता है । दुःख की तरफ से मुंह मोड़ लेता है । ऐसा व्यक्ति सफल नहीं हो सकता ।

यह तो प्रभु से प्रेम नहीं है, यह गुरु से प्रेम नहीं है । वह तो जिस परिस्थिति में रखे उसी में खुश रहना है । उसको तो एक Actor (कलाकार) की तरह जैसा Director (निर्देशक) निर्देश देता है उसी तरह काम करना है । दुःख सुख उसके लिए एक जैसे है । दोनों

में वह सुखी रहता है और ईश्वर का कृतज्ञ रहता है । वह कुछ नहीं मांगता है, जब प्रभु बच्चों की तरह पालन पोषण करते, हमारे दुःख सुख उन्हें मालूम है और वह बड़ी अच्छी तरह हमारी देखभाल करते हैं तब हमारे भीतर में अविश्वास क्यों ? विश्वास इसलिए नहीं है कि प्रभु के साथ प्रेम नहीं है । प्रभु को हम समझते हैं कि वह हमारा नौकर है । हम चाहते हैं कि जैसे हमारी इच्छाएँ उठती हैं उन्हीं के अनुसार प्रभु हमारे काम करते जाए । आज ही हम देवराहा बाबा के पास गए यही बात वह भी कह रहे थे कि जो आता है वह यही चाहता है कि मेरी मांग पूरी हो जाए । और उन्होंने उदाहरण दिया कि एक शिकारी है, पक्षियों पर वह गोली चलाता है तो एक पक्षी तो जरूर मरेगा ही । यदि मरने वाला कह दे कि मैं न मरू, दूसरा मर जाए तो मरना तो एक को है ही । वह नहीं मारेगा तो दूसरा मरेगा । इसलिए ऐसी बात क्यों करनी चाहिए ? जैसे जिसके संस्कार हैं, ईश्वर की इच्छा है, वैसी बात तो होगी ही । दुख सुख तो होंगे हीं । एक का सुख दूसरे का दुःख है । यदि ईश्वर की लीला में, प्रसन्नता में सम्मिलित नहीं होते हैं तो हम ईश्वर में विश्वास नहीं रखते हैं ।

कबीर साहब के पास एक राजा आए । उन्होंने दीक्षा के लिए प्रार्थना की । उन्होंने कहा कि राजा अभी एक वर्ष के बाद आना । जब वह एक वर्ष बाद आए तो एक भंगिन को सीखा रखा था कि जब वह आए तो उनके ऊपर गंदगी डाल देना । उसने वैसा ही किया । राजा को बहुत गुस्सा आया, अहंकारी थे, बोले, जानती नहीं मैं कौन हूँ ? नहा धोकर कबीर साहब की सेवा में पहुंचे हैं । उन्होंने कहा कि और एक साल बाद आना । एक साल के बाद फिर आया । उसका संस्कार था जो वह बार बार आता था । दूसरे बार भी उस भंगिन ने वैसा ही किया । राजा ने कहा कि क्या किया तूने ? मुझे तो कबीर साहब के पास जाना था । तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था । कबीर साहब की शरण में गए, तो उन्होंने कहा 'अभी एक साल और' । तीसरे साल गए हैं फिर भंगिन ने पूर्ववत ही किया तो राजा कहते हैं 'तू तो कोई देवी है' । समझ मैं आ गया, अभिमान टूट गया, दीनता, सहनशीलता आ गई । भंगिन में भी कई बार कबीर साहब के दर्शन हुए । कबीर साहब के पास दौड़े दौड़े गए । चरणों में जा गिरे कबीर साहब ने आलिंगन किया और अपना लिया ।

इस घटना से हमें कुछ सीखना चाहिए क्या हमारे भीतर में इतनी सहनशीलता है, इतनी दीनता है ? राजा होते हुए भी भंगिन को कहता है कि 'तू तो देवी है' यह हालत अगर मेरी पहली बार में हो जाती, तो क्या ही अच्छा होता । आप अपना स्वनिरक्षण करने पर देखेंगे

तो पाएंगे कि अभी तो हम सागर किनारे भी नहीं पहुंचे हैं, अभी तो सागर पार करना है । हमारी कथनी करनी और रहनी में बहुत कमियां हैं । जब हम मनन करेंगे तभी हमें पता चलेगा । मनन भी तभी होता है यदि गुरु और ईश्वर के साथ प्रेम हो । नहीं तो मन कहता है 'इसमें क्या बात है' । मन कहता है यदि तुमने कोई बात नहीं मानी तो क्या बुराई है इसमें, मेरी भी तो इच्छा है, वह भी तो पूरी होनी चाहिए । मन ऐसे ऐसे ढोंग रचता है कि दीनता इस में आती ही नहीं है । एक नन्हा पौधा आंधी तूफान में झुक जाता है और बच जाता है और जो बड़ा वृक्ष होता है वह हठी होता है वह अड़ा रहता है और गिर जाता है । हमें नन्हे पौधे की तरह बनना है । दीनता में आनंद है, प्रसन्नता है । कथनी करनी और रहनी को बनाने का मतलब है अपने मन को बनाना चाहिए । गुरुदेव के या शास्त्रों के जो आदेश है उन्हें देखना चाहिए कि हम उनका कितना पालन कर रहे हैं । एक एक शब्द का मनन करेंगे तो आपके भीतर में आत्मिक प्रगति बढ़ती चली जाएगी । आँखें बंद तो बच्चे भी कर लेते हैं । थोड़ी सी शक्ति भी आ जाती है । शुद्ध आचरण, सब साधनों के नींव हैं । जिनका आचरण शुद्ध या पवित्र नहीं है उनका अध्यात्मिक जीवन ऊंचा नहीं होता है । आप कितनी देर पूजा में बैठते हैं, इसका चिंतन मत करिये । यदि मैं तीन घंटे साधना में बैठता हूँ और मेरे मन में कठोरता है अहंकार है, दूसरे के दुःख में शरीक नहीं होता हूं, तो मेरे तीन घंटे बैठना बेकार है । यह तो एक नशे की तरह से है । शास्त्रों में इसी को 'जड़ समाधि' कहा है । इस जड़ता से दूर जाना है । जो आगे बढ़ चुके हैं उनको अपनी सब इच्छाएं अपने प्रीतम पर न्योछावर कर देना चाहिए । इसका मतलब यह नहीं कि हम संसार में नहीं रहे या संसार से भाग जाये । खूब मेहनत करें । (जिस परिस्थिति में आपको रखा है उसमें धर्म के अनुसार खूब मेहनत करें, सफलता मिलती है तो भगवान का शुकर करना चाहिए, असफलता मिलती है तो समझना चाहिए कि यह हमारे हित में है इसलिए प्रभु ने ऐसा किया है और खुशी खुशी इसको स्वीकार करना चाहिए)।

यही भगवान कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं । तेरा कर्तव्य है लड़ना । विजय या पराजय का तुम्हें नहीं सोचना है । और आगे जाकर और विस्तार से कहते हैं कि कर्म का जो फल है उसमें इच्छा और आशा तो सम्मिलित होंगी ही, उनको निराशा होगी यदि उसके मुताबिक कर्म फल नहीं होगा । इस निराशा से बचने के लिए भगवान ने बहुत सरल उपाय बताया है कि कर्म तो करो, कर्म का जो फल है उसके साथ आसक्ति नहीं होनी चाहिए । उसके साथ चिपकाव नहीं होना चाहिए । परन्तु हम करते नहीं है ।

संसार को जानने के लिए सांसारिक मन की आवश्यकता होती है । परंतु परमात्मा की अनुभूति तभी होगी जब हम आत्मा का साक्षात्कार कर लेंगे । आत्मा ही परमात्मा में लय हो सकती है, शुद्ध बुद्धि केवल किंचित आभास मात्र ले सकती है, वह भी पूरी तरह नहीं । **आत्मा की शुद्धि के लिए आत्मा के ऊपर से आवरणों को हटाने के लिए शुरू की तीन बातें कथनी करनी और रहनी सुधारना आवश्यक है ।**

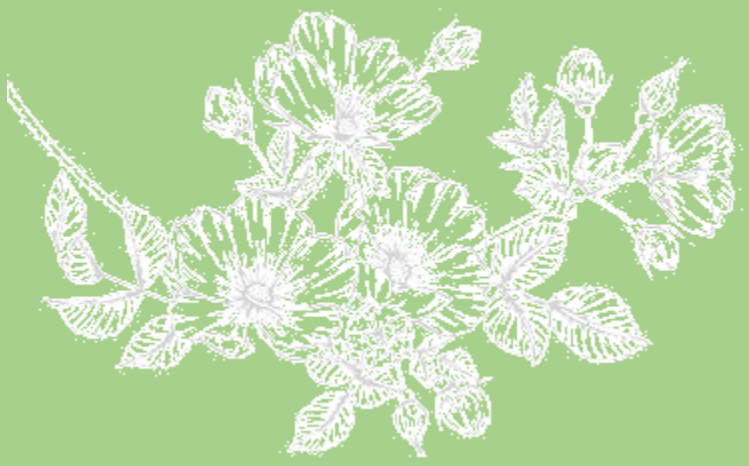

(२)

चित्त को शुद्ध करो ।

गया, २६-०१-१९८२

कहते हैं कि अगले छह महीने में या आठ महीनों में बहुत ही भयानक समय आने वाला है । दैनिक पत्र तो आप सब पढ़ते ही हैं, इसलिए आप सबको हालात तो मालूम ही है । युद्ध के बादल छा हीं रहे हैं । पढ़ा लिखा व्यक्ति भयभीत हो रहा है कि होगा क्या ? कहते हैं कि एक बटन दबाने से सारी सृष्टि तबाह हो सकती है, सिर्फ एक बटन दबाने से । जो पढा लिखा व्यक्ति नहीं है वह ज्यादा नहीं समझता है, इसलिए उसके मन में भय नहीं है । जो अधिक पढा लिखा व्यक्ति है वह बड़ा भयभीत है कि क्या होने वाला है ? कौन व्यक्ति नीचता करेगा, जिसे सिर्फ एक बटन दबाना है । कोई बड़ा भारी युद्ध नहीं होगा-- एक बटन दबेगा । इन परिस्थितियों में हमें क्या करना है । साधना में मृत्यु वरण करना बड़ा साहस का काम होता है । पता नहीं, अगला सांस आए या न आए इसके लिए तैयार रहना चाहिए । यह ख्याल रहे हमें अपने लक्ष्य (ईश्वर) की प्राप्ति करनी है, और इसके लिए समय बर्बाद नहीं करना चाहिए । उसका सदुपयोग करें । मृत्यु तो आएगी यह तो एक सत्य है, यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है, लेकिन मरने से डरना नहीं चाहिए किंतु मृत्यु का स्मरण रखना चाहिए । जो लोग मृत्यु का स्मरण रखते हैं उनसे बुरे कर्म कम होते हैं । मृत्यु का स्मरण करने से हमारा फल सिद्धी का निशान (ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य) सुगम होता है । ये लड़ाई झगड़े तो यहीं रह जाएंगे । जब अहंकार को चोट लगती है कि फला व्यक्ति ने ये कहा, फलां ने ये कहा, मैं भी ऐसा करूंगा वैसा करूँगा इसी भागदौड में हम तानाबानी करते रहते हैं । अपने आप को रेशम के कीड़े की तरह अपने ही जाल में बांधते रहते हैं । मित्र भी उस समय शत्रु बन जाता है । मृत्यु के समय मरने वाला सबसे क्षमा मांगता है कि हे मेरे भाई, हे मेरे मित्र, माता पिता आदि क्षमा करो । यदि मैंने जीवन में आपके साथ कोई बुराई की हो तो क्षमा करना । क्योंकि वह नहीं चाहता कि वे संस्कार वह अपने साथ ले जाए ।

यदि हमारा प्रत्येक क्षण ऐसा हो कि हमारी किसी के प्रति द्वेष भावना न हो यदि किसी के प्रति हमने बुराई की हो तो उससे क्षमा मांग लें और यदि किसी ने हमारे प्रति बुराई की है तो उसे क्षमा कर दें । चित्त शुद्ध और निर्मल हो जाए और जब अंतिम घड़ी आये,

उस वक्त किसी बात का भय न हो । उस वक्त भय किस बात का होता है ? हमारे पापों का, भय हमारी आंखों के सामने आ जाता है । ये ही यमदूत बनकर सामने खड़े हो जाते हैं । जिनका चित्त शुद्ध और निर्मल होता है उसको भगवान देखते हैं कि भगवान आए हैं लेने के लिए । और जिनका चित् मलीन होता है वो रोता है । इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि जितना बन सके उतना सत्त पर चलना चाहिए । यद्यपि यह बहुत कठिन है किंतु कोशिश करनी चाहिए कि सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य आदि का पालन हो । हमारा शरीर स्वस्थ हो, मन स्वस्थ हो । स्वस्थ से मतलब है कि कुविचारों से ऊपर उठे, संस्कार न बनने पाए । बुद्धि स्वस्थ हो, बुद्धि के स्वस्थ होने का मतलब यह है कि वह प्रेरणा आत्मा से या गुरु से ले । मन बुद्धि के अधीन हो, शरीर, इन्द्रियाँ, मन के अधीन हो --सब में एक प्रकार का संगीत हो । समन्वयता हो (harmony) फिर देखें कि आपको शांति मिलती है कि नहीं ।

हम कहते हैं कि बड़ा तप करते हैं साधन करते हैं परंतु शांति नहीं मिलती । शांति कैसे मिले, भीतर में संगीत नहीं है, इंद्रियां अपने नाच नाचना चाहती हैं । हमारा मन वश में नहीं है ,संकल्प विकल्प उठाता रहता है । बुद्धि तर्क करती है आत्मा सोई पड़ी है तो । जब तक भीतर में संगीत नहीं होगा समता नहीं आवेगी और जब तक समता नहीं आवेगी शांति नहीं मिलेगी शांति । शांति के बाद ही कहीं आत्मा के प्रकाश का ज्ञान या अनुभव होगा प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में है आत्मा का अनुभव करना । किसी अन्य व्यक्ति ने कुछ नहीं करना । किसी संत के पास कुछ समय बैठकर आपकी थोड़ा सा आनंद मिल सकता है बाकी करना तो आपको होगा । इंद्रियों को वश में लाना होगा, मन के संकल्पों और विकल्पों से मुक्त होना होगा । ये मन के विकार खत्म नहीं हो सकते जब तक कि आपके विचार शुद्ध नहीं होते, आपकी वाणी शुद्ध नहीं होती, आपका व्यवहार शुद्ध नहीं होता । आप एक तरफ तो लड़ाई झगड़ा करें और संध्या में बैठे और यह चाहे कि मन एकाग्र हो जाए यह कैसे हो सकता है? लड़ाई झगड़ा करें, बुराई करें, पाप करें और संध्या के समय मन स्थिर हो जाय एकाग्र हो जाए । वास्तव में शांति तभी मिलेगी जब बुद्धि स्थित-प्रज्ञ अवस्था को प्राप्त करेंगी, ज्ञान अवस्था में पहुंचेगी, अनुभव की अवस्था में पहुंचेगी, आत्मा के नजदीक पहुंचेगी । इन सब बातों का आधार चरित्र का निर्माण करना है ।

व्यक्तिगत चरित्र के निर्माण से व्यक्ति का उद्धार तो होगा ही उसके उद्धार के साथ साथ परिवार का उद्धार होगा , परिवार को प्रेरणा मिलेगी । परिवार के उद्धार के साथ साथ

गली मोहल्ले वालों का उद्धार होगा, शहर का उद्धार होगा, देश का उद्धार होगा और सारे विश्व का उद्धार होगा । दो चार दस व्यक्ति अच्छे आचार व्यवहार के निकल आये तो देश का उद्धार हो सकता है । जहां अन्य लोगों ने आज (२६ जनवरी १९८२) शपथ उठाई है कि देश के ध्वज को ऊँचा रखेंगे । आप सबका कर्तव्य अपने जीवन लक्ष्य (ईश्वर) की प्राप्ति के लिए आप शपथ उठायें कि भविष्य में पवित्रता का जीवन व्यतीत करने का प्रयास करेंगे । दीक्षा लेते वक्त हम यही विश्वास (गुरु को) दिलाते हैं परन्तु हम उसे भूल जाते हैं । इस वादे को बार-बार दोहराना चाहिए, ताकि हमारा लक्ष्य हमारे सामने रहे और हम उसे पूरा कर सके । जिस व्यक्ति का कोई लक्ष्य नहीं है, उस व्यक्ति का जीवन क्या है ? कुछ तो आदर्श होना चाहिए । उस आदर्श की प्राप्ति के लिए मनुष्य को सब कुछ बलिदान देने के लिए तैयार रहना चाहिए । आदर्श बिना बलिदान के प्राप्त नहीं होता । किसी प्रकार का आदर्श हो इसमें कोई तर्क नहीं है । आप धर्म को अपनाते हैं, आपके संतमत में या कोई अन्य संप्रदाय हो कोई यह नहीं सिखाता कि झूठ बोलो, हिंसा करो कोई संप्रदाय बुराई नहीं सिखाता । केवल अंतर यही है कि इन बातों को शिक्षा के अलग अलग संप्रदायों ने भिन्न भिन्न तरीके अपनाए हैं, लक्ष्य एक ही है ।

राम संदेश, अप्रैल १९८२ ।

(३)

सत्संग के शिक्षक-वर्ग के लिए चेतावनी

भभुआ (बिहार) २९-१-१९८२

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु जाने को आहि, बसें के हि ग्रामा ।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पायँ उपानह की नहीं सामा ॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रह्यो , चकी सो वसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत अपनो नाम सुदामा ॥

(भक्तवर रसखान जी)

भंडारे का समय या सत्संग का समय इसलिए होता है कि हम इस गंगा के प्रवाह में आकर जो हमारे शरीर मन चित्त और बुद्धि पर मलिनता छा जाती है उसको धोएं , निर्मल हो । इस तीर्थ पर आकर हमारे भीतर कुछ नई उमंगे उठे, नए संकल्प लें कि भविष्य का जीवन हमारा और निर्मल हो । ईश्वरमय हो प्रेममय हो । यहां आकर जहां तक हो सके सांसारिक बातों में समय न गवांये । प्रति क्षण गुरु महाराज के चरणों की पवित्र स्मृति बनी रहे । शिक्षक-वर्ग जो यहाँ काम करते हैं उनका विशेष दायित्व है कि वो आये हुए बहिन भाइयों की अधिकाधिक सेवा करें । उनके आराम का ख्याल करें, परन्तु साथ साथ उनको अपने जीवन से प्रेरणा दे की वे जिस भाव को लेकर इस सत्संग में सम्मिलित हुए है उस भावना की पूर्ति हो । सभी अपने भाई हैं । शिक्षक वर्ग को एक हीं स्थान पर नहीं बैठना चाहिए । जहाँ जहाँ सत्संगी ठहरे है उनके स्थानों पर जाना चाहिए और उनके साथ बात-चीत करनी चाहिए ताकि मित्रता का सम्बन्ध , एक प्रेम का सम्बन्ध स्थापित हो । प्रेम का मतलब यह है कि सब बहिन भाई एकता की भावना को लें । कोई अपने आप को बड़ा न समझे कोई अपने आप को छोटा न समझे । सभी तो एक हैं । उस महान व्यक्ति (गुरुदेव) के हम सब शिष्य हैं, परस्पर भाई हैं । एक ही शरीर के अंग हैं । सबके भीतर में एकता का भाव उत्पन्न होना चाहिए ।

इस अवसर पर शिक्षक वर्ग का अधिक दायित्व है । यदि यहाँ आकर भाई लोग प्रेम नहीं सीखते हैं, उनके भीतर प्रेम नहीं उत्पन्न होता है तो इसकी जिम्मेदारी मेरे उपर या जिन भाइयों को शिक्षा का काम सुपुर्द है, उनकी है । हमें अपने आराम की चिंता नहीं करनी चाहिए, हमें अपने लिए विशेष भोजन की चिंता नहीं करनी चाहिए, हमें चिंता केवल उनकी सेवा की होनी चाहिए, जो दूर से बहिन-भाई आए हैं । आजकल इतनी महंगाई है, जो व्यक्ति इस

महंगाई में इतनी दूर से आता है, वह तो वीर हैं । घर के सुख को छोड़कर आया है किस मतलब के लिए आया है । आप से प्रेरणा लेने के लिए आया है । उनको आत्मिक मानसिक सुख दें, उनके दुखों को सुनें, उनके धैर्य दे । जिस प्रकार भी हो सके उनकी सेवा और सहतोग करें । अभी आप सुन रहे थे कि जितना बड़ा व्यक्ति होता है, उतना ही उसका दायित्व बड़ा होता है और उसका व्यवहार भी सर्व साधारण व्यक्ति से कहीं महान होता है । अभी आप बाणी सुन रहे थे, सुदामा जी अपनी धर्मपत्नी के कहने से बडे संकोच के साथ भगवान के दरबार में द्वारिका जी पहुंचे हैं, मन में सोच रहे थे कि वे तो राजा हैं, भले ही बचपन में हम दोनों एक ही गुरु के चरणों में रहे, दुर्वासा जी से शिक्षा प्राप्त की, परंतु भाग्य अलग अलग हैं । वह द्वारकाधीश बने, यह बेचारे गरीब, कंगाल, ब्राह्मण ही रहे । घर में खाने को नहीं है, पत्नी कहती है कि हे स्वामी, अपने मित्र कृष्ण के पास जाइये । यह हमारी परीक्षा की घडी है कि मित्र का क्या लाभ है ? जब दुःख या कष्ट होता है तब देखना चाहिए कि मित्र सहायता करता है या नहीं । सुदामा कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे, वे सोचते थे कि संसार में किसी से कुछ मांगना नहीं चाहिए । कुछ सूक्ष्म अहंकार भी था कि अपने मित्र से जाकर क्या मांगूँ, और मैं क्यों भिखारी बनूँ ? तब भी धर्मपत्नी के कहने पर सुदामा जी द्वारका पहुंचे हैं । दरबान ने उस कंगाल ब्राह्मण को फटे पुराने कपडे पहने हुए देख कर कहा कि उसको भीतर जाने की आज्ञा नहीं दी जाएगी । सुदामा जी ने बहुत कुछ कहा, समझाया कि भगवान मेरे बाल सखा हैं, मैं उनसे जरूर मिलूंगा । दरबान ने भीतर जाकर सब वृतांत कहा है । भगवान स्वयं बाहर दौड़े आए हैं । ऐसा नहीं है कि हमारे जैसे बड़े आदमी, वजीर आदमी, छह छह कमरों के भीतर छिपे रहते हैं । कोई रिश्तेदार क्या, बाप भी आ जाये तो उसको मिलने में संकोच करते हैं । भगवान स्वयं दौड़े दौड़े बाहर आए हैं और सुदामा जी को बडे स्नेह से गले लगाया है और भीतर महल में ले गए हैं । उस गरीब ब्राह्मण को अपने ही सिंहासन पर बिठाया है । उन्होंने और रुक्मणि जी ने दोनों ने ही, उनके चरण कमलों को धोया है और वहीं जल पिया है, उसे सच्चे हृदय से स्वीकार किया है । यह भगवान कर रहे हैं एक गरीब ब्राह्मण के लिए, पूछा है कि भाभी ने मेरे लिए क्या भेजा है ? क्या वस्तु उपहार में भेजी है । ब्राह्मण छिपाता है बगल में एक छोटी सी पोटली में थोड़े से कच्चे चावल हैं, भगवान सब जानते हैं । वह चावल छीनकर मजे से खा रहे हैं । कहते हैं कि जीवन में इतना आनंद आया ही नहीं, इतना स्वादिष्ट भोजन खाया ही नहीं । उस ब्राह्मण का पुनः आलिंगन किया है और मौन में ही सब कुछ दे दिया है । कोई भी ढिंढोरा नहीं पीटा है, चारों पदार्थ दे दिए है । चार प्रदार्थ का मतलब है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष संसार

में और क्या रह जाता है । सभी इच्छाओं की पूर्तिकर दी है, आर्थिक सहायता इतनी दी है कि वह ब्राह्मण कभी सोच भी नहीं सकता था । धर्म भी उसका बना दिया है यानि उसके मन को शांत कर दिया है और उसके सब संस्कार धो डालें और मोक्ष प्रदान की है । मोक्ष तो तभी मिलता है कि, जहां जहां मन फंसा हुआ हो वहां से हटाकर आत्मा का साक्षात्कार कर दिया जाए । अपने साथ योग स्थापित कर दिया है । बड़े सम्मान के साथ विदा किया है ।

लौटते समय पथ में सुदामा जी सोचते हैं कि यह क्या ड्रामा है ? मेरा इतना सम्मान किया सिंहासन पर बैठाया और दिया कुछ नहीं । यह हमारी अवस्था है, हम कभी भी संतुष्ट नहीं होते हैं, गुरु की कृपा या ईश्वर की कृपा का बीज पड़ता है और फिर धीरे धीरे उसका विस्तार होता है तब गुरु कृपा का अनुभव होता है । तो सुदामा जी मन में यही विचार करते करते अपने घर आए हैं । देखा तो अपने घर (कुटिया) नजर ही नहीं आ रहा है । चकित रह जाते हैं कि क्या मामला है । धर्मपत्नी को पहचानते नहीं है, बड़ी मुश्किल से धर्म पत्नी समझाया है कि भगवान ने आकर यह लीला रची है । आपकी दरिद्रता गरीबी सब दूर कर दी है ।

वह ब्राह्मण कोई साधारण ब्राह्मण नहीं था । भले ही वह आर्थिक तौर से गरीब था परन्तु मन में तो भगवान कृष्ण के साथ एक महान गुरु से शिक्षा ग्रहण की थी । भगवान कृष्ण की इस लीला को देख कर विस्मय में पड़ गया और अपनत्व को खोकर भगवान के प्रेम में प्रेम रूप हो गया और अमर हो गया ।

तो यह केवल भगवान का हीं दायित्व नहीं है जितने भी शिक्षक वर्ग के भाई लोग हैं उन्हें भगवान कृष्ण की इस लीला से प्रेरणा लेनी चाहिए । जितने यहां भाई-बहन आये हैं उनकी यथा योग्य सेवा करनी चाहिए । उनकी सेवा करने से ही, आपकी सेवा होगी । जब तक गुरु, या अन्य आचार्य या अन्य शिक्षक वर्ग के लोग इनकी सेवा नहीं करेंगे, उनका स्वयं का उद्धार भी नहीं होगा । **गुरु महाराज का आदेश था और सबके सामने उन्होंने यह आज्ञा दी थी कि जितनी अधिक से अधिक बहन-भाईयों की सेवा करेंगे, उतना ही अधिक भीतर में प्यार की जो बीज डाला था वह अधिकाधिक अंकुरित होगा । यदि हम भाइयों की सेवा नहीं करते हैं केवल सेवा कराते ही हैं तो यह बीज दबा रहेगा ।**

पूज्य गुरु महाराज की का जीवन देखिये अधिक समय तक अपने शरीर की परवाह नहीं की, घूमते रहे । मैंने निवेदन किया कि आप बीमार है, वृद्धावस्था है, अब तो

आराम करना चाहिए । उन्हें दिल का दौरा हुआ था, बहुत दिनों बाद तबियत सामान्यता में आई । कहने लगे कि पूज्य लाल जी महाराज (दादा गुरु) अंतिम समय तक भाइयों की सेवा करते रहे तो हम कैसे आराम कर सकते हैं । क्या यह शरीर अपने लिए, यह शरीर तो बहन भाइयों की सेवा के लिए है, हम तो जरूर बाहर जायेंगे, जो होगा देखा जाएगा । और इसी सेवा में शरीर की आहुति दी है । तो कभी भी हमें अपने आराम के प्रति सोचना नहीं चाहिए, परन्तु ऐसा आराम नहीं कि भाई बहन तो कष्ट में है और हम घर से भी ज्यादा आराम, यहाँ पर उठाएं । आंखें बंद करके भगवान के ध्यान में बैठ जाना, असली पूजा नहीं है । हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य में ही उनकी पूजा का प्रकाश हो । यह एक बड़ी भूल है हम लोगों की । खासकर बहनें कहती हैं कि हमें समय नहीं मिलता सुबह बच्चों को तैयार करना, फिर पति को दफ्तर जाना होता है । फिर शाम की तैयारी हो जाती है रात के ११ बज जाते हैं । फिर पूजा का समय नहीं मिलता । यह जो हम काम करते हैं, उसको पूजा का रूप क्यों नहीं दे देते हैं । जो व्यक्ति अपने काम को पूजा का रूप दे सकता है और उसमें सफलता प्राप्त करता है वह महान है । यह सबसे बड़ी पूजा है, तप है, ऐसा करने वाले का जीवन अति कुशल होगा । उसमें आनंद प्रेम और शांति होगा । पूज्य लाला जी महाराज (परम संत महात्मा रामचंद्र जी महाराज) का एक प्रवचन है जिसमें उन्होंने फरमाया है कि जो व्यक्ति व्यवहार में कुशलता प्राप्त कर लेता है वह व्यक्ति एक जगह मन को एकाग्र करने की चेष्टा से कहीं बेहतर है । यह जो कुछ हम करते हैं यह मन को स्थिर करने का प्रयास है । यह एक Theory है, वास्तविक पूजा तो वह है कि जो दिनचर्या है उसको ईश्वरमय बनाना है । प्रत्येक काम बातचीत, विचार पूजा के रूप में, आहुति के रूप में किया जाना चाहिए । आप किसी मित्र के साथ बातचीत कर रहे हैं तो यह ख्याल करिए की आप अपने इष्टदेव के साथ बात-चित कर रहे हैं । यदि ईश्वर स्वयं आ जाए तो आप उसको कितना सम्मान देंगे । इसी प्रकार उस व्यक्ति में ईश्वर के दर्शन करे उसको वही सम्मान दें जो आप ईश्वर को देंगे । आपके व्यवहार में कितनी कुशलता होगी, आपको कितनी प्रसन्नता मिलेगी और जिसके साथ आपका ऐसा व्यवहार होगा उसको कितना चैन और आनन्द मिलेगा । इसके लिए अंग्रेजी में कहते हैं “Work is worship” कर्म ही पूजा है । यह जो सुबह-शाम बैठते हैं यह तो तैयारी है । जैसे सुबह अगर स्नान न करें तो शरीर में स्फूर्ति नहीं आएगी, इसी तरह सुबह और शाम बैठकर भीतर का स्नान करते हैं । वास्तविक पूजा जो है वह हमारी दिनचर्या है । यदि सारे दिन हम संसार का शोषण करते हैं, भ्रष्टाचार में पड़ते हैं तो यह कैसी पूजा है ? एक व्यक्ति आए कहने लगे कि जितना हम इश्वर की तरफ

बढ़ते हैं उतने ही अधिकाधिक कठिनाईयां आती है, समाज से उत्तेजना, शारीरिक दुःख, मानसिक क्लेश यह क्या है ? यह सत्य है । जो व्यक्ति आदर्श का जीवन व्यतीत करना चाहेगा उसके आगे तो अर्चना आएंगे ही, केवल खयाल से ही तो आदर्श की प्राप्ति नहीं होगी । जब तक प्रकृति माता आपके रास्ते में अड़चनें नहीं डालेगी तो आप सफल कैसे होंगे ? यह तो आएगी ही । जो आदमी इन अड़चनों को ईश्वर की प्रसादी समझ कर आगे बढ़ता है वह सफल हो जाएगा । इसके लिए तो दो तीन बातों का ध्यान रखना पड़ेगा । आपने आदर्श लिया है प्रभु-प्रेम का तो हमें व आपको वही बात करनी होगी जिससे हमारे प्रभु हमारे इष्टदेव प्रसन्न हो । उसकी प्रसन्नता ही हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य होगा । अगर कोई तकलीफ आती है तो उसको हम ईश्वर की प्रसादी समझ कर ग्रहण करें । तब तो भीतर में शांति रहेगी । बहुत मुश्किल है । किसी स्त्री का पुत्र या पति गुजर जाता है तो हम उसको कहें कि इसको ईश्वर की प्रसादी समझो । शुरू में तो उसकी समझ में नहीं आएगा । हमने देखा है लोग बाग पागल हो जाते हैं कहते हैं कि हम नहीं जानते कौन गुरु है, कौन ईश्वर है । यदि ईश्वर इतना अन्यायी है तो हम ऐसे इश्वर को नहीं मानते हैं । यह हमने सुना है । **हम लोग पत्थर के तो है नहीं, यदि ऐसा दुःख आता है तो बहुत मुश्किल है सहन करना । परंतु जिसने आदर्श बनाया हैं जिसने सत्संग में दाखिला लिया है, उसको तो परमात्मा की हर लीला को उसकी अदा समझनी पडेगी । यह प्रेम की एक अवस्था है । इसमें संतुष्ट होकर रहना पड़ेगा । जबरदस्ती नहीं, दुख हो या सुख हो, भगवान की लीला में दोनों अवस्थाओं में खुश रहना होगा ।** जब तक हम ऐसा नहीं करेंगे, ईश्वर की गति में अपनी गति को नहीं मिलायेंगे तब तक हम अपने आदर्श को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते ।

तो आदर्शमय जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति के लिए उचित है कि वह प्रत्येक परिस्थिति को ईश्वर की प्रसादी समझे । जो दुःख सुख हमें मिलता है यह पिछले संस्कारों के फलस्वरूप मिलता है । जो भी हम काम करें वह निष्काम भाव से करें । उत्साह, उमंग के साथ, ईश्वर को साथ रखकर करें, दूसरे के हित के लिए, दूसरे को प्रसन्न करने के लिए, दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए करें और उस काम का जो भी फल होता है उस फल के साथ हमारी आसक्ति न हो , हमारा मोह ना हो । शुरू शुरू में कठिनाई आएगी आप सोचेंगे, मैं तो अमुक व्यक्ति के लिए इतना करता हूँ और वह बदले में मुझे गालियां देता है बहनें अक्सर आकर ऐसा कहा करती हैं और ज्योतिषी लोग भी उन्हें खूब ठगते हैं, चकमा देते हैं, पैसा लूट ले जाते हैं कहते हैं बहन तुम तो सब की सेवा करती हो, तुम्हारे साथ सब दुर्व्यवहार करते हैं

ऐसा चकमों में नहीं पड़ना है, भाइयों को ऐसी बातों से ऊपर उठना है, रास्ता बहुत कठिन है कि कोई तो हमें गाली दे और हम जाकर उसके पैर छुएँ। फरीद जी कहते हैं कि जो तुम्हारी पिटाई करें तुम जाकर उनके पांव चुमों। महापुरुष भी जब परीक्षा लेते हैं, वह भी यही देखते हैं कि हमारे व्यवहार में कुशलता है या नहीं।

एक महापुरुष के पास एक जिज्ञासु दीक्षा लेने के लिए आया। पुराने जमाने में दीक्षा सस्ते मूल्य में नहीं मिलती थी। शिष्य का भी अधिकार है कि वह गुरु की परीक्षा ले और गुरु का तो अधिकार है ही कि वह शिष्य की परीक्षा ले। तो गुरु ने शिष्य से कहा कि तुम जाओ, तुम्हें रास्ते में चार व्यक्ति मिलेंगे। तुम प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर तमाचा लगाना और देखना कि परिणाम क्या होता है। शिष्य ने सोचा कि यह क्या मामला है ? उसके भीतर अभीप्सा गुरु का प्रेम प्राप्त करने की। दीक्षा लेने का मतलब यह नहीं कि नाम ले लिया और कुछ नहीं है। दीक्षा लेने का मतलब है कि सब कुछ ईश्वर के चरणों में अर्पण करना है और सबसे मुख्य अर्पण करने वाली वस्तु जो है वह अभिमान है, अहंकार है। गुरु से ईश्वर प्रेम की भीख मांगनी चाहिए। भीतर में अभीप्सा थी तो यह आज्ञा लेकर वह व्यक्ति बढ़ा। रास्ते में देखा कि एक व्यक्ति खड़ा हुआ है उसने झट एक थप्पड़ दे मारा। उस व्यक्ति ने जवाब में थप्पड़ हीं दिया। जिज्ञासु सोचने लगा कि यह क्या तमाशा है थप्पड़ मारूं और थप्पड़ खाऊं। हुक्म था कि चार व्यक्तियों के पास जाना है। दूसरे व्यक्ति के पास गया उसको भी थप्पड़ दिया, उसने कहा, "भले मानस मैंने क्या गुनाह किया जो तुमने थप्पड लगाया है।" दो चार गालियां दे दी। जिज्ञासु ने कहा शुक्र है यहां थप्पड़ नहीं पड़ा, दो चार गालियां ही पड़ी। तीसरे व्यक्ति के पास गया और थप्पड लगाया उसने भी कहा, "भैया कुछ भूल हो गई होगी जो अपने तक पर लगाया है। तुम अपना रास्ता लो आगे बढ़ो।" चौथे व्यक्ति के पास गया और थप्पड़ लगाए उसने उसका हाथ पकड़ लिया। कहने लगा, "मेरा तो शरीर बहुत कठोर है आपके हाथ को चोट लगी होगी।" उसके हाथ को दबाने लगा। तब इस जिज्ञासु की समझ में आया कि दीक्षा लेने से पहले मुझे धैर्य को अपनाना चाहिए। सहनशीलता को अपनाना है, दैवी गुणों को अपनाना है, पवित्र होकर ईश्वर के चरणों में जाना है। तब वह अपने गुरु के पास आया और चरणों में गिर गया उस जिज्ञासु ने अपना सब कुछ गुरु के चरणों में अर्पण कर दिया और जो कुछ गुरु के पास था उसने सब कुछ शिष्य को दे दिया।

तो इस प्रकार अवसर पर इस भंडारे पर सब बहन और भाइयों को भी उचित है कि वे अपने आदर्श को भूले नहीं एवं वे भाई भी जिनको शिक्षा का काम सुपुर्द है अपने दायित्व को भूले नहीं । उनके पास जो कुछ हैं वह भाइयों को बांटें और जो भाई आए हैं वह अपनी अभीप्सा और प्यास को और बढ़ाए । गुरुदेव कहा करते थे कि परमार्थ के रास्ते पर असंतुष्ट होना चाहिए, कभी संतुष्ट नहीं होना चाहिए । हे प्रभु ! और दीजिये, और दीजिये । हे प्रभु ! संसार के प्रति उपरामता आनी चाहिए । बस और कुछ नहीं चाहिए । शुक्र है । शुक्र में आ जाना चाहिए, कृतज्ञता में आ जाना चाहिए । संतोष में रहना चाहिए । केवल प्रभु प्रेम के लिए भीख मांगनी चाहिए ।

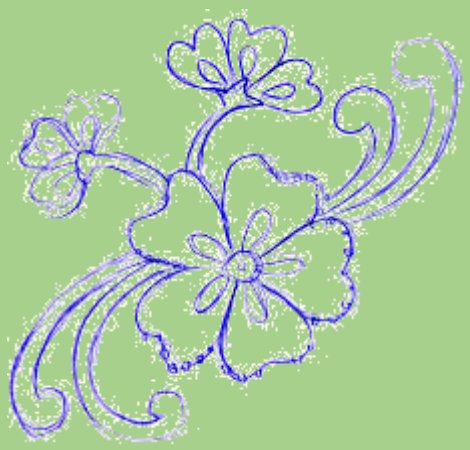

(४)

परमात्मा के प्रति सच्ची जिज्ञासा होनी चाहिए

भबुआ , दि० ६-२-१९८२

नववैराग्य की कन्याओं से तुलना की है । विवाह के बाद बहुधा उनका जीवन शुरू शुरू में सुखद नही होता है । माता पिता के घर में बड़े लाड प्यार से उनका पालन पोषण किया जाता है । जब वे ससुराल जाती है तो उनको नया जवान मिलता है, सास कुछ आशा रखती है, पति कुछ ऐसा रखता है । परिवार के लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं, उनका जीवन एक उलझन सी होती है । इसी प्रकार की अवस्था जिज्ञासुओं की होती है । प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसको ईश्वर जो उसका सच्चा पति है तुरंत मिल जाए, और उसका जीवन सुखमय बन जाय, किसी प्रकार का कष्ट न रहे, किसी प्रकार का दुःख न रहे, किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक पीड़ा न रहें । यह आंतरिक इच्छा है, आशा है, प्रत्येक व्यक्ति की । जिज्ञासु के रूप में गुरुदेव स्वयं प्रश्न करते हैं कि ' सौं '(पति) यानी परमात्मा कैसे मिले ? प्रभु कृपा से कन्याओं में सहन शक्ति, सहयोग की शक्ति, बचपन से ही होती है । ससुराल में जाती हैं तो मायके को भूल जाती है । नये वातावरणको तुरंत ही अपना लेती हैं । अनेकों उतेजना मिलती है, कठिनाई आती है, तो गुरुदेव कन्या के रूप में प्रश्न कर रहे हैं कि इस परिस्थितियों में कन्या जिसको अभी जीवन का कुछ ज्यादा ज्ञान नहीं है, अज्ञानी हैं, वह क्या करें ? स्वयं हीं उत्तर देते हैं "आप गंवाइये ता सौं पाइये ।" यानि अपना आपा खो दें, अहंकार को खत्म कर दें, दीनता, तालमेल, सहयोग इन गुणों को अपनाएं तो ईश्वर की प्राप्ति तुरंत हो सकती है । यही बात जिज्ञासु को करनी है कि किसी प्रकार से भी अहंकार त्यागें और दीनता व ईश्वर के साथ सहयोग (राजी-व-रजा) को अपनायें । आँखें बंद करने से, अभ्यास करने से, शक्ति मिल सकती है, तनिक सा आंतरिक सुख भी मिल जाए, लेकिन यह काफी नहीं है । भीतर में त्रुटियां, बुराईयां और अहंकार भरे पड़े हैं, वो दूर हो जानी चाहिए । जब तक ऐसा नहीं होता तब तक प्रभु रुपी आनंद सागर में अपने आपको कैसे लय कर पाएंगे, निरंतर आनंद, निरंतर सुख की प्राप्ति नहीं हो पायेगी । यही पहला और आखिरी कदम है ।

अहंकार को खत्म कर । जो पुरुष हैं उनको भी स्त्री वर्ग से, बहनों से सीखना है । लड़कियों में, बहनों में, दीनता का गुण स्वाभाविक है । करुणा, दया, सहानुभूति, सेवा ये ऐसे गुण हैं जिनको जब तक हम नहीं अपनाएंगे, तब तक हमें ईश्वर की या गुरु के समीपता प्राप्त

नहीं हो सकती । इन गुणों को होते हुए भी जिज्ञासुओं में अहंकार रह जाते हैं और यह भिन्न भिन्न रूप धारण करके आता है । जैसे रावण के सर पर गद्धे का सिर रखा है, ग्यारह सिर लगाए हैं, यह सब अहंकार के भिन्न रूप हैं । यह गद्धे का सिर केवल रावण के शरीर पर ही नहीं था हमारे और आपके, सबके शरीर पर है । हम रावण के सिर को दशहरे पर चलाते हैं लेकिन हमारे शरीर के ऊपर जो रावण का सिर (अहंकार) है उसको हमने कभी नहीं जलाया । जब तक उस सर को नहीं जलाएंगे, अहंकार को खत्म नहीं करेंगे, तब तक पति (परमेश्वर) को प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती है ।

स्वयं हीं गुरुदेव सहानुभूति दिखाते हैं कि जिज्ञासु एक अज्ञान बाला की तरह क्या करें ? एक अज्ञान व्यक्ति क्या करें ? और स्वयं ही उत्तर देते हैं कि पति तो तेरे भीतर में बैठा है, तू किस अज्ञान में पड़ी है । शंकराचार्य भी कहते हैं तो 'तत्वमसि' । ईसा मसीह कहते हैं " know thyself " (अपने आप को पहचानो)–" That thou art " (तुम वही हो) ऐ भोले भाले मनुष्य ! तुम तो स्वयं वही हो । परमात्मा, सच्चा पति तो तुम्हारे भीतर ही है । उसी बात का गुरदेव हमें पुनः विश्वास दिला रहे हैं कि परमात्मा का अपने अंतर में दर्शन करके उनके प्रेम की अनुभूति क्यों नहीं करते हो ? ऐ अनजान बाला, वो धन, वो पति, वो परमात्मा, तो इतना नजदीक है, जिसको तू सोच भी नहीं सकती ।

परमात्मा को बाहर क्यों ढूंढ रहे हैं ? वह तो हमारे भीतर है । महर्षि रमन ने भी कहा है कि लोग बाग़ ईश्वर को बाहर से बुलाते हैं, परन्तु वो भूल जाते हैं कि ईश्वर तो उनके भीतर बैठा है, उसको क्यों नहीं देखते ? वो नजदीक से नजदीक, समीप से समीप है उसकी अनुभूति क्यों नहीं करते ? उसके दर्शन क्यों नहीं करते ? बाहर दौड़ने से क्या फायदा ? जंगल में जाने से क्या फायदा ? परन्तु हम अज्ञान वश समझते हैं कि यह हम तो यह शरीर है और भीतर में जो संकल्प विकल्प उठते रहते हैं यही हमारा असल है । असली जो हमारा स्वरूप है आत्मा, अज्ञानवश हम उसका सुमिरन नहीं करते हैं । महापुरुष कहते हैं कि उस परमात्मा को बाहर ढूंढने से क्या लाभ, ? मृग में सुगंधी है पर वह सुगंधी की खोज में भागा भागा फिरता है । वह कस्तूरी रूपी आत्मा आपके भीतर है परन्तु हम ढूंढते हैं बाहर । तो गुरुदेव कह रहे हैं कि भीतर में ही आत्मा है परमात्मा हैं आपका सच्चा पति बैठा है । अज्ञान और अहंकार को छोडो और उसके चरण कमलों को पकड़ लो । आपने रास्ता बताया हैं कैसे भीतर चले ? कैसे पति को प्रसन्न करें ? पति के प्रति लज्जा रखें, प्रेम भाव रखें । हम

काजल लगाते हैं अपनी आंखों में, क्षमा का काजल डालें ताकि ये आँखे पति के दर्शन कर सके । आपका श्रृंगार किस प्रकार का हो ? वह भाव का हो, प्रेम का हो, श्रद्धा का हो । भय और भाव को अपनाए, दीनता को अपनाएं । जब इन गुणों को अपनाते हैं ऐसे श्रृंगार, ऐसा काजल और ऐसे वस्त्र पहनते हैं तो हम अधिकारी बन जाते हैं । हमारा पति प्रसन्न हो जाता है "तां सुहागिन जानिए लागी जो सौं भरे पियार । " स्त्री तभी सुहागिन हैं यदि उसका पति के साथ प्रेम है, नहीं तो पति के होते हुए वह दुहागिन हैं । हम भी जिज्ञासु या ईश्वर प्रेम तभी कहला सकते हैं यदि ईश्वर के साथ हमारा सच्चा प्रेम है । किस प्रकार का प्रेम ? मछली जब पानी से बाहर निकलती है तो क्या अवस्था होती है उसकी ? वह जल के बिना रह नहीं सकती, अपने प्राण दे देती है । यह सच्ची स्त्री का प्रेम होना चाहिए कि वो पति के बिना रह ही ना सके । जिज्ञासु दुहागिन हैं, वह सत्संगी नहीं है, जो अपने इष्टदेव के लिए, परमात्मा के लिए, सच्चे पति के लिए, व्याकुल नहीं होता । " तुझे रो रो के याद करना, आजिज़ की बंदगी है । "

स्वामी रामतीर्थ जी के पास स्वामी विवेकानंद गए हैं, शाम को प्रवचन दिया है "भक्ति पर" । घर लौटे हैं तो स्वामी रामतीर्थ से पूछते हैं कि आज आपने मेरा प्रवचन सुना आप को कैसा लगा ? स्वामी जी ने उत्तर दिया है–"एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानोगे ।" विवेकानंद जी ने कहा–"नहीं" । रामतीर्थ जी कहते हैं कि "भक्ति" पर प्रवचन किया गया हो और आपके आंखों से एक अश्रु न गिरे, यह भक्ति का कैसा प्रवचन है ?

भक्ति की हमारी साधना हो और हमारे भीतर में व्याकुलता न हो तो ये कैसी हमारी साधना है ? गुरुदेव कहते हैं कहते हैं कि वह स्त्री दुहागिन है जो पति के साथ प्रेम नहीं करती, सुहागिन वही है जो पति के साथ प्रेम करती है । 'प्रेम' का अर्थ क्या है ? अपना सब कुछ न्योछावर कर देती है, कोई इच्छा भी नहीं रखती, जो पति की इच्छा है उसी में उसका रूप, उसका श्रृंगार, उसका व्यवहार सब पति के प्रसन्नता के लिए होते है । इसी प्रकार सच्चे जिज्ञासु की साधना ये होती है कि उसके प्रत्येक व्यवहार का अंग साधना का रूप लिए हुए हो और उसका परिणाम क्या हो ? इष्टदेव की प्रसन्नता । कुछ नहीं चाहिए । "**राज न चाहों, मुक्ति न चाहों, प्रीत चरण कमला रे** ।" प्रेम में मांगना नहीं होता, आशा नहीं होती, बलिदान होता है, सब कुछ न्योछावर कर देते हैं । ये भी हम नहीं जानते कि हम अपने पति के साथ प्रेम क्यों करते हैं ? गुरुदेव ने प्रेम के लक्षण बताए हैं हम जानते ही नहीं कि हम क्यों प्यार करते हैं, हम इस प्रेम में कोई आशा न रखे, प्रेम में यदि कोई आशा या आकांक्षा रखते हैं

तो हमारा प्रेम की भावना सच्ची नहीं । यदि हम यह चाहते हैं कि हमारा यह संसारिक काम हो जाए, वह हो जाए तो ये स्वार्थ है, परमार्थ नहीं है । पति उस पर प्रसन्नता होता है जो अपने जीवन की आहुति दे देता है । कुछ नहीं चाहिए, यहां तक कि मुक्ति भी नहीं चाहिए, हम अपने आप को सुहागीन तभी कहला सकते हैं यदि हमारे पति के साथ सच्चा प्रेम है और मछली की तरह यदि हम उनसे पृथक हो जाए तो प्राण दे दें । पति के बगैर फिर जीना कैसा ? तो हममें सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न ही नहीं हुई हैं । अभी तो हमारा पत्नी का रूप बना ही नहीं है, वो निखरा ही नहीं है । हमने समझा ही नहीं है कि पति के साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए । हम अभी अनजान बाला है, हमें पता ही नहीं कि हम प्यार कैसे करें ? आगे चलकर फिर वही बात दोहराते हैं यानी अनजान बाला क्या करें ? पति उसको प्यार नहीं करता है, परमात्मा के दर्शन नहीं होते तो जिज्ञासु या कन्या क्या करें ? हम अनजान हैं, हमने रास्ता नहीं देखा है, गुरु हमारा मार्गदर्शन करता है । हम आप बड़ी कोशिश करते हैं परन्तु परमात्मा के चरणों की प्राप्ति नहीं होती । तो गुरुदेव कहते कि हमारी व्याकुलता उसे अच्छी लगती है, हमारा रोना उसे अच्छा लगता है । हमारे प्रेमाश्रु उसके चरण कमल धो डाले, यह उसको अच्छा लगता है । जब तक ऐसा नहीं करेंगे, आरामकुर्सी पर बैठेंगे, सबेरे उठते हैं और बगैर संध्या पूजा के दफ्तर को भागेंगे, तो काम नहीं चलेगा ।

तो अपने भीतर में परमात्मा के प्रति, अपने इष्ट के प्रति व्याकुलता अपनाएं । एक ऐसी तड़प उससे मिलने की हो जैसे मछली को पानी के अभाव में होती है आप में दीनता हो और राजी-व-रजा हो और जिस हाल में आपको पति यानी परमेश्वर आपको रखे उसी में खुश रहे तभी हम सच्चे जिज्ञासु कहलाने योग्य होंगे तभी हम सच्ची सुहागिन कहलाने योग्य योग्य होंगे नहीं तो हम दुहागिन है, हमारा प्रति हमसे कैसे प्रसन्न होगा और कैसे हमें उसका प्यार मिलेगा ?

अहंकार का त्याग करें यानि आपा गंवा दें, दीनता अपनाएँ , इष्ट के प्रति अपने भीतर में व्याकुलता पैदा करें, कोई काम हमारा ऐसा न हो जिससे हमारे इष्ट की अप्रसन्नता हो । कोई घंटा मिनट या पल ऐसा न जाए जो हमारे पति की याद से खाली जाए तब हम अपने अंतर में उसके दर्शन और उसके प्यार की अनुभूति कर सकेंगे ।

राम संदेश, सितम्बर १९८२

(५)

मोह और आसक्ति को तोड़ना चाहिए ।

भबुआ,(बिहार) दि० ६-२-१९८३ सायं

प्रार्थना, आराधना, जो भी हम थोड़े समय के लिए करते हैं वो जीवन की कुशलता से बिताने के लिए एक तैयारी करते हैं । This is a process (यह एक तरीका है) । हम सब संसार में रहते हैं, परिवार में रहते हैं, जीवन हमारा संबंधों का है, कहीं हमें ठोकरें मिलती हैं, गालियां मिलती हैं, कहीं हमें सराहा जाता है, शत्रु-मित्र सब मिलते हैं, परन्तु तैयारी यही है कि जैसी भी परिस्थिति प्रतिकूल या अनुकूल आये , हम भीतर में संतुष्ट रहें ,प्रसन्न चित् रहें, आनंदमय रहे । ईश्वर से भिखारी होकर क्या मांगते हैं ? उसका प्रेम मांगते हैं । ये प्रेम अपने घर के एक कोने में बैठकर मांगने के लिए नहीं है । ये तैयारी के लिए है । जब सुबह स्नान करते हैं तो शरीर में चुस्ती आ जाती है । इसी प्रकार ईश्वर से ईश्वर के गुणों के लिए हम प्रार्थना करते हैं कि उनको अपनाकर अपना जीवन मंगलमय बना सके ।

संसार में जो इस रास्ते पर आगे बढ़ता है उसको बड़ी उत्तेजनाएं मिलती हैं । कई लोग तो घबराकर रास्ता ही छोड़ देते हैं । जब मुसीबत सर पर आती है तो रास्ता छोड़ देते हैं । कहते हैं कि हम नहीं जानते कि गुरु कौन है परमात्मा कौन है ? हमें कुछ मतलब नहीं । इस दुःखमय अवस्था में इतनी परीक्षा होती है कि हम गुरु और ईश्वर दोनों को ही छोड़ देते हैं । और वे लोग कहते हैं कि वही लोग सुखी हैं जो संसार का शोषण करते हैं, पाप करते हैं । यह कैसा विधि का विधान है कि हम सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं और हमें कष्ट मिलते हैं केवल साधारण व्यक्ति ऐसी बातें नहीं करते किन्तु जो पचास-पचास साल के अभ्यासी हैं , परीक्षा की परिस्थिति में वे भी डावाडोल हो जाते हैं । संसार में रहते हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए ? सब जानते हैं कि भगवान कृष्ण का गीता के रूप में सारे संसार के लिए उपदेश है । वो उपदेश अर्जुन को दिया गया है । उसमें रजोगुण की प्रधानता थी, सात्विक वृत्ति भी थी, तामसिकता भी थी, परन्तु रजोगुणी वृत्ति अधिक प्रधान थी । तामसिक वृत्ति इसलिए कि जुआ खेल कर द्रोपदी को हार गया । सात्विक वृत्ति इसलिए कि वे शास्त्रज्ञ थे. विद्वान थे, और आत्मा की बातें करते थे । आप सब को मालूम ही है कि एक दिन जब अर्जुन भगवान के चरणों में बैठे हैं तो एक ब्राह्मण आया और रोने लगा । अर्जुन ने पूछा–" क्यों रोते हो ? "

ब्राह्मण देवता कहते हैं, "मेरा इकलौता बेटा था, वह मर गया, मुझसे यह दुःख बर्दाश्त नहीं होता ।" तो अर्जुन सात्विक बात करते हैं, आध्यात्मिकता की, बल्कि सत्यता की बात करते हैं "हे ब्राह्मण, तुम ब्राह्मण होकर रोते हो । तुम्हें तो आत्मा का ज्ञान है । क्या आत्मा भी कभी मरती है ? " तो ये सात्विक बातें भी अर्जुन में थी । तामसिकता भी थी, परन्तु रजोगुण अधिक प्रधान था । अर्जुन संसार के तमाम प्राणियों का प्रतीक बनकर (गीता में) भगवान से प्रश्न करता है ।

अधिकांश लोगों में रजोगुण प्रधान रहता है । तामसिक व्यक्ति के लोग बहुत कम होते हैं । इसी प्रकार सात्विक वृत्ति के लोग बहुत कम होते है । सत्य को अपनाए हुए यानी आत्मस्थिति के लोग गिनती के होते हैं । हम सब लोग राजसिक वृत्ति के हैं । एक प्रकार के लोग तो वे हैं जो सत्संग में रहते हैं और एक प्रकार के लोग हैं जो सत्संग के बाहर रहते हैं । सत्संग में जो व्यक्ति रहता है उसका जीवन कुछ विशेष होन चाहिए । कोई उसको उत्तेजना देता है तो कोई उसे क्या करना है ? इसका उत्तर भगवान ने अर्जुन को गीता के रूप में दिया है और इस माध्यम से हमको सुनाया कि अज्ञान को छोड़े । अज्ञान को छोड़ने का मतलब यह है मैं शरीर मन प्राण आदि नहीं हूँ मैं तो आत्मा हूँ । मोह को छोड़े । मेरे-तेरे-पन को छोड़े सब कुछ परमात्मा का ही है । अहंकार को छोड़े । ये दुःख सुख किसको महसूस होते हैं ? हमारे अहंकार को । चोट किसको लगती हैं, हमारे अहंकार को ।

पहले भगवान ने अर्जुन को तीन बातों से मुक्त कराने की कोशिश की है । ज्ञान को अपनाकर, आत्म स्थित होकर, आत्मा के गुणों को समझ कर, अहंकार और मोह को छोड़ने के लिए प्रेरणा दी है । अर्जुन समझता है किन्तु उसके भीतर मैं राजसिक वृत्ति के संस्कार अभी निकले नहीं है । यही हालत हमारी है । हम रोज सत्संग में सुनते हैं कि यदि कोई आपके प्रति बुराई करता है तो उसको क्षमा कर देना चाहिए परंतु हम से होता नहीं । यह एक Practical (व्यवहारिक) बात है । philosophical (दार्शनिक) बातें तो कर लेना बड़ा आसान है परन्तु जब वास्तविकता सामने आती है तब हम क्या करें ? अर्जुन को भी राजसिक वृत्ति युद्ध के समय खत्म नहीं हुई थी । युद्ध-स्थल में रथ खड़ा है, युद्ध की सब तैयारियाँ है फिर भी वह भगवान से प्रश्न पर प्रश्न किये जा रहा है । भगवान कहते हैं कि व्यक्तिगत रूप से उत्तेजनाओं को सहन कर लेना वीरता है । इस धरती पर सहनशीलता एक महान गुण हैं और सत्संगी का यह श्रृंगार है । परन्तु भगवान, अर्जुन को छूट दे रहे हैं कि छह प्रकार के

व्यक्ति हैं, उनका मुकाबला करने, उनका वध करने में कोई पाप नहीं है । अर्जुन कहता है कि इधर तो मेरे गुरुजन हैं, चाचा है, ताऊ है, लोग और कुटुम्बी हैं, इन्हें नुकसान पहुंचाकर मुझे क्या लाभ है ? प्रश्न बड़ा बुद्धिमानी का है,सात्विक बुद्धि का है । अब सवाल में व्यक्ति का और समाज का आ जाता है इसलिए भगवान कह रहे हैं कि समाज को कायम रखने के लिए जरूरी है कि वो तत्व जो समाज को बिगाड़ते हैं, उनको समाज से निकलना, या उनका वध करना या उनको किसी प्रकार के शारीरिक हानि पहुंचाना, ये कोई पाप नहीं है । जैसे किसी की स्त्री का कोई अपहरण कर लेता है या राज पर कोई आपत्ति आ जाती है या धर्म संकट आ जाता है इस प्रकार की छह बातों पर भगवान ने छूट दी है ।

दूसरी तरफ भगवान महावीर हैं एक राजा उनकी सेवा में जाता है और निवेदन करता है कि मेरा पडोसी राजा मुझसे अकारण लड़ता है । भगवान पूछते हैं कि कारण क्या है ? वह राजा उत्तर देता है कि पड़ोसी राजा के मन में इर्ष्या है । मेरे पास उस की तुलना में संपत्ति कुछ अधिक है । भगवान उत्तर देते हैं कि इसमें कौन सा कठिनाई है । तुम अपना सारा राज उसको दे दो और तुम मेरे पास आकर भिक्षु बन जाओ । ये धर्म संकट की बात आई । आपके जीवन में भी ऐसी घटनाएं आती हैं, उनका निर्णय हम क्या लें ? उस राजा की समझ में आ जाता है और दूसरे राजा को अपना राज दे देता है । स्वयं भी प्रसन्नचित्त हैं और दूसरा राजा भी प्रसन्न हो गया, इर्ष्या खत्म हो गई । वो राजा सात्विक वृत्ति का था, उसके संस्कार सात्विक थे । परंतु अर्जुन जो हमारा प्रतीक है और हम जो राजसिक वृत्ति लिए हुए हैं क्या करें ? जिनको इस अध्यात्म के रास्ते पर चलना है, उसको तो भगवान महावीर का रास्ता अपनाना हीं होगा । सब कुछ बलिदान करना होगा और जिसको संसार का रास्ता चलना है उसको अर्जुन का रास्ता अपनाना है वो भी कोई साधारण सरल रास्ता नहीं है बहुत कठिन है ।

संतो ने बीच का रास्ता अपनाया है जो भगवान करते हैं वो हमारे हित के लिए, इसकी गहराई में जाइए । यदि कोई हमारा अपमान करता है और गुरुदेव कहते कि यह तुम्हारे हित के लिए है तो उसे ठीक मान लो । दार्शनिक रूप में यह बातें अच्छी लगती हैं परन्तु जब हमारा कोई अपमान करता है तो हमारा मन बडा खराब होता है, ये क्यों होता है ? अधिकतर तो हम महापुरुष के उपदेश का पालन नहीं करते । ये बात हमारी बुद्धि में मन मे समाई ही नहीं है कि जो कुछ होता है हमारे हित के लिए होता है । इसका अभ्यास करना होगा । यही

तत्व है हमारे यहां का । पूज्य लाला जी महाराज (दिवंगत महात्मा रामचंद्र जी महाराज) की पुस्तक (अमृत रस) के अंत में तीन चार सफे हैं जिसमें यह लिखा है कि यह हमारे यहाँ का तप है । लानत , मलामत, अपमान आदि प्रतिकूल भावों को स्वीकार करना ये हमारे हित के लिए है । यहां का तप है जो इसको स्वीकार कर लेता है वो आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है । उन्होंने बड़ी स्पष्ट शब्दों में कहा है । किंतु यहां बड़ा कठिन तप है । जब तक हम इस तप को नहीं करते, जब तक हम इस परीक्षा में सफल नहीं होते, तब तक हमारी साधना प्रगतिशील नहीं होगी । मैं किसी को दोष नहीं देता है । ऐसी परिस्थिति में मेरी अपनी हालत बिगड़ जाती है । कई दफा मन में सोचता हूं कि लोगों को तो उपदेश देता हूँ और मेरी ये अवस्था है ।

विनोबा जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि किसी ने ५०-६० साल पहले उनको कोई बुरी बात कही थी (उनकी उम्र इस वक्त ९० साल के ऊपर है)–ये महापुरुष बड़े सत स्वरूप होते हैं, सच्ची बातें करते हैं जो भीतर में वही बाहर में उनका व्यवहार होता है । अपनी बुराइयों को छिपाते नहीं है --तो जब कभी वे पुरानी बातें याद आ जाती हैं तो हमारे भीतर व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है । ऐसे ही शब्द पूज्य गुरु महाराज (ब्रह्मलीन श्री कृष्ण लाल जी महाराज) के थे । ये बातें छूटती नहीं है । ये जो घाव है ये इतने गहरे होते चले जाते हैं यानि हमारी चेतना में इतनी गहराई में अंकित हो जाते हैं कि अनुकूल परिस्थितियों में वह बाहर निकल आते हैं और हम गाफिल हो जाते हैं, पागल से हो जाते हैं । ज्यादातर जो हत्याएं होती हैं इन्ही घावों के कारण होती है । संसार में जितनी बुराई होती है वे सब संस्कारों के परिणाम से होती है । जो व्यक्ति ये साधना करता है कि हे प्रभु ! जो आप करते हैं वह हमारे हित के लिए है, उसके ऊपर विश्वास करते हैं, उसको कभी दुःख का भान नहीं होता है । वह हमेशा आनंदमय रहेगा । यही राजी-व-रजा (यथा लाभ संतोष) की स्थिति है । अपनी गति को ईश्वर की गति में मिला देना है । परन्तु यह बहुत कठिन है ।

संत राबिया के पास तीन साधू आये हैं । मुसलमानों में आप एक महान स्त्री संत हुई हैं । वो देवी संतो से पूछती हैं कि राजी-ब-रज़ा का क्या मतलब है । अपनी गति को ईश्वर की गति में मिला देने का अर्थ क्या है ? तो एक साधू कहते है कि यदि परमात्मा सुख दे तो हमें कृतज्ञ होना चाहिए, दूसरा साधु कहते यदि परमात्मा दुःख भी दे तो भी हमें प्रसादी का रूप मान लेना चाहिए, तीसरे से पूछा तो उसने कहा मैं कुछ नहीं कह सकता आप

ही बताइए । तो वो देवी कहती हैं कि दुख सुख का भान ही न हो । यही भगवान कृष्ण की रासलीला है और यही जो अभी बहन पढ़ रही थी, कि हे प्रभु ! दुःख सुख दोनों आपके चरणों में हैं और जो आप करते हैं वो सब हमारे हित के लिए है । अंग्रेजी में कहते हैं–Life is a game -- जीवन एक क्रीडा है इसे भली प्रकार खेलें (Play nit well) । दो टीमें खेलती हैं जरूरी है कि एक टीम हारेगी दूसरा विजय प्राप्त करेगी । मगर दोनों की मानसिक अवस्था प्रायः एक सी होती है जब खेल खत्म हो जाता है तो दोनों टीम के कैप्टन हाथ मिलाते है । बड़े प्यार से मिलते हैं, चाय आदि पीते हैं, और जुदा हो जाते हैं । इस प्रकार जीवन व्यतित करना होगा ।

लक्ष्य तो हमारा यह है कि आप उसकी गति में अपनी गति को मिला दें इसके प्रयास में हम समय समय पर असफल भी होंगे लेकिन घबराने की जरूरत नहीं है । इसके अभ्यास में हमें करना क्या होगा ? अज्ञान का त्याग करना होगा, ज्ञान को अपनाना होगा कि हर प्राणी में एक ही आत्मा काम कर रही है । जब यह सिद्धि प्राप्त हो जाएगी तब भीतर से मेरा-तेरा-पन छूट जाएगा । इसका फल क्या होगा ? यदि आपके साथ कोई बुराई करता है तो तुरंत आप क्षमा कर देंगे अभी हमारा स्वभाव क्षमा करने का नहीं हुआ है क्योंकि अभी हम अज्ञान की स्थिति में अज्ञान विकसित नहीं हो हुआ है ज्ञान के विकास के बाद परमात्मा के गुणों की सुगंधी फैलने लगती है पहला गुण हैं क्षमा का ।

हमें दोनों बातों का ध्यान रखना होगा-- व्यक्तिगत साधना एवं समाज । जहां समाज का प्रश्न आता है वहां भगवान के उपदेश का पालन करना होगा जहाँ व्यक्तिगत प्रश्न आता है वहाँ संतों की बात माननी होगी । स्वामी राम कृष्ण जी के जीवन की एक गाथा है । गंगा में एक संन्यासी स्नान कर रहे हैं । जल में एक बिच्छु बह रहा है , उसे बचाते हैं, बिच्छू उन्हें काटता है, काट कर पानी में गिर जाता है । वो सन्यासी उसे उठा कर पुनः हाथ पर रख लेते हैं । लोग कहते हैं कि आप क्या कर रहे हैं ? बिच्छु को मार देना चाहिए । यहाँ प्रश्न संन्यासी का है, साधारण व्यक्ति का नहीं है । सामान्य व्यक्ति के लिए तो यह ठीक है कि उसे मार दे । बिच्छू उसे तो काट ही रहा है दूसरे को भी काटेगा । इससे तो अच्छा है कि उसे मार कर एक तरफ फेंक दें । यहां परीक्षा है संन्यासी की । भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भिन्न भिन्न साधनाएं हैं भिन्न भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए । वे संन्यासी उत्तर देते हैं कि यदि यह बिच्छु जिसको कोई ज्ञान नहीं है वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है तो मैं आत्मज्ञानी हो

कर भी मैं अपने स्वभाव को कैसे छोड़ दूँ। यह नहीं हो सकता। तो जैसा व्यक्ति होता है वैसा उसका व्यवहार होना चाहिए।

गुरुगोविंद सिंह जी के दो सुपुत्र है, नन्हें बच्चे हैं, दीवारों में जिंदा चुनवाए जा रहे हैं। एक सेवक हाथ जोड़कर विनती करता है कि गुरुदेव ! आज्ञा दें-- दिल्ली जाकर बादशाह और औरंगजेब की ईट से ईट बजा दूँ। देखिये दीनता का रूप। वे कहने लगे -अच्छा, तुम में बड़ी शक्ति आ गई है। पर ये तो बताओ कि यह शक्ति आई कहाँ से ? तो सेवक कहता है–गुरुदेव ! ये आपकी दी हुई प्रसादी ही तो है गुरुदेव कहते हैं।" गुरुदेव कहते हैं कि बच्चे मेरे हैं तुमसे ज्यादा दुःख मुझे होना चाहिए। मैं ईश्वर की मौज में, जो कुछ हो रहा है, उसमें प्रसन्न रहता हूँ, तुम्हें क्यों दुःख हो रहा है ? तो जो सम्पूर्ण गुरु है वह ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न रहता है और जो सेवक हैं हमारे जैसे उसको दुःख होता है। दोनों का व्यवहार सही है यह नही कि सेवक का व्यवहार गलत है, उसका व्यवहार भी सही है। उसको गुरुदेव ने ऐसी ही परिस्थिति में रखा कि वह गुरुदेव से ऐसी आज्ञा मांगता। परंतु गुरुदेव की स्थिति कुछ और थी उनकी दीनता इसी में थी कि जो ईश्वर कर रहा है वह उसके हित के लिए है। हित क्या है ? देश को जागृत करना, लोग बाग सोए हुए थे। दिन दहाड़े हमारी लड़कियां उठाई जाती थी और कोई पूछता नहीं था। कोई आवाज नहीं उठा सकता था। उस वक्त की स्थिति देखें तो रोना आता था कि हमारी हालत क्या थी। उस वक्त कुर्बानी देने का समय था यह ईश्वर की मौज थी उस कुर्बानी ने लोगों की जागृति उत्पन्न की है और मुगलिया खानदान खत्म हो गया। तो जैसा व्यक्ति है उसका व्यवहार भी वैसा ही होना चाहिए, यदि आप संत बनते हैं तो पहले आपको संत गति को अपनाना होगा परंतु जहां समाज का सवाल आ जाता है वहां दीनता के उपदेश को नहीं मानना होगा यह बात नहीं करनी होगी, जो सोमनाथ के मंदिर में उस वक्त के पुजारियों ने की। मोहम्मद गौरी फौज लेकर सोमनाथ के मंदिर पर चढ़ाई करने आया और वहां के पुजारियों ने गायें आगे कर दी है, यह गायों को नहीं मारेगा तो इसीलिए वह आगे नहीं बढ़ेगा, यह मूर्खता थी उनके पास शक्ति थी और वो मुकाबला कर सकते थे परन्तु वे धर्म संकट पड़ गए और उन्होंने कमजोरी दिखाई। तो जैसे जैसे प्रगति हो जैसी जैसी व्यक्ति की आंतरिक अवस्था हो, उसके लिए वही उचित है कि परिस्थिति के अनुसार व्यवहार करें यदि समाज को कायम रखने के लिए कोई लड़ाई लड़नी पड़ती है, हिंसा का प्रयोग करना पड़ता है तो वह पाप नहीं है, वह पुण्य है। यह धर्म संकट सबको आता है तो हम करें क्या ? अर्जुन भगवान से पूछता ही क्या गया, जब तक उसकी

संतुष्टि नहीं हुई । आपका अधिकार है यदि आपका गुरु आपके समीप है, जिंदा है, तो ऐसी परिस्थितियों में उनका परामर्श और आदेश ले लेना चाहिए । परन्तु जहाँ तक हो व्यक्तिगत हित के लिए सहनशीलता अपनानी चाहिए, क्षमा का गुणा अपनाना चाहिए, दया और करुणा का गुण अपनाना चाहिए, अपने अहंकार को काबू करने में रखना चाहिए ।

एक बार हमारे पूज्य दादा गुरु (महात्मा रामचंद्र जी महाराज) के छोटे भाई पूज्य चाचा जी महाराज (महात्मा रघुवर दयाल जी महाराज) के अफसर ने उनको कुछ उल्टा सीधा कह दिया । चाचा जी ने उनको श्राप दे दिया । जब इस बात का पता पुज्य लाला जी महाराज (दादा गुरुदेव) को लगा तो वे बडे नाराज हुए और उन्होंने चाचा जी को कहा कि हमारे आँखों से दूर हो जाओ । यह घटना केवल चाचा जी महाराज के लिए नहीं थी या हमारे लिए भी है । क्रोध आता क्यों है ? अज्ञान के कारण यह भावुकता आती क्यों है ? क्योंकि मन प्रधान है । पूज्य चाचा जी महाराज में और पूज्य लाला जी महाराज में बड़ा अंतर था पूज्य लाला जी महाराज आत्मा के स्थान पर थे, पूज्य चाचा जी में सात्विकता के साथ भावुकता थी । तो हमारा हित इसी में है कि हम अपमान आदि उत्तेजनाओं को सहन करें और जो हमें उत्तेजना देता है उसके लिए हम प्रार्थना करें उसके सुख के लिए भी प्रार्थना करें । यह दीनता है । और जैसा मैंने अभी कहा दीनता का दूसरा रूप है कि जो ईश्वर करे इसमें तृप्त रहें और यह स्वीकार करें अभ्यास करें कि जो कुछ हो रहा है हमारे हित के लिए हो रहा है । कहने को तो बड़ा सरल लगता है लेकिन बहुत कठिन है जो इस परीक्षा में सफल नहीं हुआ वह आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता है ।

जो ऊँचे अभ्यासी है, पुरानी अभ्यासी हैं उनको इन बातों का, दीनता का, ईश्वर की गति में अपनी गति को मिलाने का अभ्यास करना चाहिए । यह तभी होगा जब हम गुरुदेव के उपदेशों पर मनन करेंगे और उनका पालन करेंगे । मैं कई बार कहता हूँ (और वास्तविकता भी यही है) कि हमारे लोगों में मनन की कमी है । हमारे यहाँ ही नहीं मैंने जहां जहां देखा वहां मनन की बहुत कमी है । गुरु नानक देव ने लिखा है कि व्यक्ति को मनन का अभ्यास करते रहना चाहिए । पहले तो उन्होंने लिखा है कि 'सुन्यक' यानी गुरु का उपदेश सुनना-- महापुरुषों का प्रदेश सुनना, सत्संग में उपदेश सुनना-- सुनने से भी साधक को परम गति मिल सकती है शास्त्रों में भी यही लिखा है । उन्होंने लिखा है कि जब सुनकर मनन करता है तो उसका भी उद्धार हो गया कोई साधना करने की आंख बंद करने की जरूरत ही नहीं होती --केवल सुनकर

मनन करने से । ठीक है कि आंख बंद करके अभ्यास करने से अनुभूति होती है परंतु जैसा कि गुरुदेव कहा करते थे, ये ईश्वर की पूजा है मन एकाग्र हो जाता है । मन की एकाग्रता से आप आत्मा का भी साक्षात्कार कर सकते हैं और संसार के किसी भी काम को बड़ी कुशलता से कर सकते हैं । मानसिक और शारीरिक शक्ति प्राप्त करते हैं परन्तु जब तक इस पर मनन का रंग नहीं चढ़ेगा उस शक्ति का दुरुपयोग भी हो सकता है, और हुआ है । एक ओर विश्वामित्र जी को देखिये और दूसरी ओर वशिष्ट जी को देखिये । वशिष्ट जी को सौ पुत्र थे विश्वामित्र जी उन को एक एक करके कत्ल किये जा रहे हैं । विश्वामित्र जी का क्रोध खत्म होने पर नहीं आता और वशिष्ठ जी की शांति भंग नहीं होती । दोनों ही महापुरुष हैं, एक में शक्ति दुर्व्यवहार कर रही है और एक में शक्ति सद व्यवहार कर रही है । शक्ति वही है मन की । एक आत्मा के स्थान पर है, एक राजसिक वृत्ति लिए हुए है । सौ बच्चे कत्ल कर दिये । परन्तु यह कत्ल करना तभी बंद हुआ है जब उनका अहंकार खत्म हुआ । वशिष्ठ जी कह रहे है की महर्षि विश्वामित्र कितने ऊंचे ऋषि हैं । विश्वामित्र यही चाहते थे कि वशिष्ठ जी महर्षि की उपाधि दे दें–सिर्फ एक इसी बात के लिए सौ बच्चों के कत्ल किये । और जब उन्होंने अपने कानों से सुन लिया कि यह तो मुझे महर्षि कहकर पुकार रहे हैं और मैं इनके बच्चे कत्ल कर रहा हूँ तो उनके अहंकार को चोट लगी और उस समय वशिष्ठ जी से जाकर क्षमा मांगी । तो सहनशीलता महान तप है, लोगों की बातें, अपमान सहन करना, दुःख सुख सहन करना, ये हमारे यहाँ का तप है और यही दीनता है ।

मेरे साथ भी इस तरह की एक दफा वारदात (घटना) हुई है । हम गुरु महाराज के साथ सत्संग में फतेहगढ़ गये हुए थे । ये बातें तो सब जगह हुआ ही करती है । उस सत्संग में कुछ ऐसे लोग थे, तत्व थे, जिन्होंने गुरु महाराज के प्रति कटु शब्द, बहुत ही अपशब्द और जो कुछ भी कह सकते थे उन्होंने कहा, कहते गए । गुरु महाराज के साथ मैं हीं उनका अकेला सत्संगी था । मुझसे बर्दाश्त नहीं हुआ, गुरदेव नहीं बोले, मौन रहे, सुनते रहे, परंतु मुझसे बर्दाश्त नहीं हुआ । कुछ देर सुनता रहा परंतु खून में जोश आता गया । आखिर मुझसे रहा नहीं गया । मैंने बोलना शुरू कर दिया, काफी उपद्रव हुआ । जब सब खत्म हो गया तब मैंने गुरु महाराज से पूछा कि मैंने ऐसा किया कहीं गलती तो नहीं हो गई । उन्होंने कहा कि सरदार जी आपके लिए यही योग्य था और वास्तव में यही योग्य था कि भरी मजलिस में लोग गुरु का अपमान करें और शिष्य उसको सहन करे, ये पाप है । गुरुदेव की हालत यह है कि उन्होंने एक शब्द भी मुख से नहीं निकाला मगर आगे चल कर व्यवहार मुझे भी वो ही करना

है जो गुरुदेव ने किया । वे भी अपने लिए चिंता नहीं करते थे परन्तु सत्संग के लिए यदि कोई भला बुरा कहता था तो वे अनुशासन को पहले रखते थे । अनुशासन के लिए जो भी योग्य कदम होता था, उठाते थे और वो कदम उठाना भी दीनता का रूप है क्योंकि सत्संग को बचाना है । मनुष्य की वृत्ति है कि वो समाज को बिगाड़ता हैं । व्यक्तिगत हानि की कोई चिंता नहीं है परन्तु जहाँ समाज की हानि होती है वहां धर्म अनुशासन पहले है ।

तो जहाँ तक हो सके दीनता को अपनाएं, संसार के दुख सुख को हजम करें । यही हमारे यहाँ का तप है और यही दीनता है । जब तक ये बातें व्यवहार में नहीं उतरती हैं तब तक भीतर में सच्ची शांति नहीं उपजती ईश्वर का क्या मिलना है ? वो तो हमेशा आपके साथ ही है । जैसे भीतर में दीनता होगी, शांति होगी आप इस ईश्वर के बड़े ही समीप होंगे । जैसे ही मन में संकल्प उठे, क्रोध आया, अहंकार आया, या दूसरे अवगुण आये , ईश्वर से कोसों दूर हो जाते हैं । ये 'नाम' क्या है ? नाम से मतलब है ईश्वर से प्रेम करन । नाम का दूसरा रूप है 'प्रेम' । प्रेम कहां ठहरेगा । जहाँ कोई भी अवगुण नहीं होगा । अवगुण दीवारें हैं , नाम से, प्रेम से, इन दीवारों को तोड़ना है । इसलिए भगवान कृष्ण अर्जुन की जो मोह की दीवार थी उसको तोड़ने का प्रयास किया है । आसक्ति टूट जाए - आप में और इश्वर में क्या अंतर है ? तो अभ्यास जहां मन को एकाग्र करने की करते हैं वहां सद्गुणों को अपनाने का भी मनन द्वारा अभ्यास करना चाहिए । बिना मनन द्वारा या बिना सत्संग में आए हुए हम सद्गुणों को नहीं अपना पाएंगे और जब तक भीतर में सद्गुण नहीं आते हैं , सद व्यवहार हमारा नहीं होता है, और सतवृत्ति नहीं बनती है, मन Technique (साधन) से एकाग्र तो हो जाएगा परन्तु भीतर में सात्विकता और सत्यता न होने के कारण आत्मा का साक्षात्कार नहीं होगा । भीतर में सच्चा सुख नहीं मिलेगा । वो सुख जिसकी प्राप्ति हो जाने पर संसार तुच्छ मालूम होता है वो तभी मिलेगा जब भीतर की दीवारें टूट जाएगी । तब उन दीवारों को तोड़ने के लिए दीनता एक सरल उपाय है । जिस महापुरुष को देखो उसकी वाणी में दीनता ही दीनता है । **'हम भीखी भिखारी तेरे'--** तेरे दर पर खड़े हैं, तेरे भिखारी हैं । भिखारी कौन होता है ? जिसको संसार में कोई नहीं पूछता है । वो आकर दरवाजे पर ठोकर खाता है । इतने बड़े बड़े महापुरुष जिसके सामने सब रिद्धियाँ सिद्धियाँ हाथ जोड़े खड़ी है कि हुकुम दे कि हम क्या करें, वह व्यक्ति कहता है भगवान से कि **'हम भीखी भिखारी तेरे'** ।

तो दीनता अपनाएँ, सद्‌गुणों को अपनाएं अपने गुरुजनों की वाणी पर मनन करें और उसके अनुसार अपने जीवन बनाए ।

ईश्वर आप सब का भला करें ।

---

(६)

साधना में शरीर और मन स्वस्थ होने चाहिए

भबुआ (बिहार) दि० ७-२-८९ (प्रात:)

इश्वर कृपा प्रत्येक वस्तु पर , प्रत्येक व्यक्ति पर एक जैसी पडती रहती है । ये कोई अंध विश्वास की बात नही है । प्रत्येक व्यक्ति इसकी अनुभूति स्वयं कर सकता है । इतना ही करना है कि सिद्धासन में या उस आसन में जिसमें सुख मिले, उस आसन में बैठ जाएं शरीर सीधा हो परन्तु ढीला हो , मन में विकार न हों । एक प्रार्थना का भाव लेकर बैठे, हृदय की झोली फैला कर बैठे । आप चाहें तो परमात्मा का कोई नाम भीतर में लेते रहे-- इतना करना है और इस कृपा वृष्टि के नीचे बैठना है । आप देखेंगे कि २-३ मिनट के बाद आपको ऐसा मालूम होगा कि आपके शरीर को एक सूक्ष्म सी शक्ति छू रही हैं । इस अभ्यास को यदि आप बढाते चले जाए, आपका शरीर इतना सूक्ष्म हो जाएगा, जैसे कपास होती है और यदि भीतर में मन पवित्र है तो समय पाकर आप अपने अस्तित्व को भी देखेंगे कि उसका भी भान नहीं होता । केवल एक आनंद का प्रवाह चल रहा है । यह एक इतना सरल साधन है की प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो, बच्चा हो, वृद्ध हो, पुरुष हो सब कर सकते हैं । चाहे इश्वर को आप किसी रूप मेंमानते हों, देवी- देवता के रूप में मानते हों, निराकार स्वरूप को मानते हो, प्रभु के साकार स्वरूप को मानते हो, यह ख्याल करके बैठ जाइए कि हम अपने इष्टदेव के चरणों में बैठे हैं और उनकी कृपा हम पर बरस रही है । ख्याल तो आप जिधर मर्जी हो लगा लीजिये यानि जो भी ईश्वर का रूप समझें उनके सामने बैठ जाईये परन्तु कृपा आपको अवश्य अनुभव होगी । चाहे गुरु का ख्याल करके बैठ जाए (गुरु तो निमित्त मात्र है) कृपा ईश्वर की बरसती है । इतना सरल साधन है, और इतना सहज है, आसान है कि यदि कोई भी व्यक्ति इसको मन लगाकर भाव से प्रेम से कुछ महीनों करें तो उसके भीतर में क्रांति आ सकती है । लोग बाग

पूछते हैं कि क्या उसे ईश्वर के दर्शन हो जायेंगे ? यह सत्य हैं । ईश्वर के दर्शन का मतलब यह है कि आपके भीतर में वही गुन आ जाएंगे जो ईश्वर के गुण हैं । यदि किसी साधना करने के पश्चात आपके भीतर में दैवी गुण उत्पन्न नहीं होते हैं तो आपकी साधना में कहीं कमजोरी है और कमजोरी के लिए आप अपने गुरु को भी दोष दे सकते हैं । खैर, यह विषय तो दूसरा है फिर कभी मिलेंगे तब जिक्र करूँगा । इस वक्त यही करना है कि ईश्वर की कृपा वृष्टि के नीचे हम अपने आपको समर्पण करके बैठें और ईश्वर की महान कृपा को ग्रहण करें । इसमें कोई सांप्रदायिकता नहीं है । आप मंदिर में बैठकर कर सकते हैं, गुरद्वारे में बैठकर कर सकते हैं, और मस्जिद में बैठकर भी ऐसा कर सकते हैं । कमी क्या है ? **मैं पुराने अभ्यासियों से भी निवेदन करूँगा कि जो साधन आपको दीक्षा देते वक्त बताया गया है उसके साथ इस अभ्यास को भी और बढ़ाइए । इस अभ्यास को बढ़ाने से आप अनुभव करेंगे कि आप प्रत्येक व्यक्ति में अपने इष्टदेव के दर्शन कर पाएंगे । आपकी दृष्टि ईश्वरमय या गुरुमय हो जाएगी । ईश्वर की परस्थिति का भान प्रतिक्षण होने लगेगा । भीतर में एक प्रकार की शांति की अनुभूति होने लगेगी । पहले यह अनुभूति बाहर शरीर पर होगी । धीरे-धीरे जब शरीर सूक्ष्म होता चला जाएगा, इसकी अनुभूति भीतर में भी होने लगेगी** । जितना मन स्थिर होने लगेगा-- मन तब स्थिर होता है जब यह पवित्र होता है, शुद्ध होता है, सात्विकता एवं सत्यता को अपनाता है-- तो भीतर में भी यह अनुभूति होने लगेगी । भीतर की अनुभूति और बाहर की अनुभूति मिलकर एक 'योग' की स्थिति उत्पन्न कर देती है । योग का मतलब है 'मिलन' । हम ईश्वर से बिछड़े हुए हैं, हमारी आत्मा ईश्वर से बिछुड़ी हुई है । मन ने बीच में एक दीवार खड़ी कर दी है । जब यह दीवार टूट जाएगी तो आत्मा और परमात्मा एक हो जाएंगे । ईश्वर की अनुभूति हो जाएगी । आनंद भी हो परन्तु चरित्र निर्माण भी साथ साथ हो । भीतर में क्रांति भी आये, जो गुण हमारे इष्ट देव के हैं, जो ईश्वर के हैं, जो शास्त्रों में लिखे हैं, वैसा परिवर्तन हमारे अंदर होना चाहिए । यदि नहीं होता है तो यह हमारी कमजोरी है । जो व्यक्ति पढ़े लिखे हैं उनको विचार करना चाहिए । क्या बात है, क्यों परिवर्तन नहीं आ रहा है ? आप देखेंगे कि हमारे अंदर सबसे बुरा अवगुण 'प्रमाद' है । ईश्वर की स्मृति ही जीवन है, विस्मृति मृत्यु है । जीवन का अर्थ क्या है ? जब हम स्मरण करते हैं तो मन की दीवार टूट जाती है और आत्मा परमात्मा एक हो जाते हैं, उसकी अनुभूति होती है । आप अपने मित्र की स्मृति करें तो उसका स्वरूप, उसके गुण, आपकी आंखों के सामने आ जाते हैं, आप के हृदय में समा जाते हैं, तो क्या एक मित्र की तरह भी हम ईश्वर की का स्मरण नहीं कर सकते । स्मृति का मतलब ये ही

है कि उसका स्वरूप, उसके गुण, जैसे ही हम स्मरण करें उसके नाम का, वो हमारे रोम रोम में अंकित हो उठे, सारा शरीर रोमांचित हो उठे, सबी इश्वरमय प्रतीत होने लगे, सब में ईश्वर के दर्शन हो, उसी की अनुभूति हो ।ईश्वर के गुण हैं–सत्-चित्त-आनन्द । हमारी भी स्थिति सत्-चित्त-आनन्द हो जाए ।

सीधा सादा व्यक्ति इन बातों को बड़ी जल्दी पकड लेता है और उसकी अनुभूति शीघ्रता से होती है परन्तु जो बुद्धिजीवी लोग हैं उनके मन में संकल्प अधिक उठते हैं, तर्क अधिक होते है । बात को वैज्ञानिक स्तर से तौल कर फिर कहीं मानते हैं इसलिए उनके मामले में कुछ विलम्ब हो जाता है । परंतु यदि एक बार वे किसी बात को पपकड़ लेते हैं तो फिर उसे कभी छोड़ते नहीं है । अब मैं जो आपकी सेवा में निवेदन कर रहा हूँ उसको तब मानिये जब आपको इसकी अनुभूति हो जाए । आपको केवल इतना ही करना है कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ उस पर तनिक सा विचार करके उस पर थोड़ा सा अभ्यास करके देखें । यदि मेरे कहने से आपको कुछ लाभ होता है तो मुझे बडी प्रसन्नता होगी । यदि नहीं होता तो मुझसे मिल लीजिये । अनुभूति प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य होनी चाहिए जिनको सत्संग में बैठ कर अनुभूति नहीं होती है वह मेरे पास अकेले में दस पंद्रह मिनट बैठे । अनुभव करने के बाद अपने अभ्यास को बढाते चले जाए ।

ईश्वर की कृपा इतनी अधिक बरस रही है कि हम लोग इसकी परवाह नहीं करते । जो वस्तु कम होती है उसकी कीमत ज्यादा पड़ती है, जैसे सोना हीरे आदि । दूसरी वस्तुएं धातु आदि की कीमत कम पड़ती है क्योंकि वह अधिक मात्रा में हैं । जल, वायु कितनी कितनी अधिक मात्रा में है, आप सोचिये, उसकी परवाह ही कोई नहीं करता । परन्तु इन सबसे भी अधिक मात्रा में ईश्वर की कृपा बरस रही है । वो इतनी अधिक मात्रा में है कि हम उसकी परवाह ही नहीं करते । भीतर बाहर यह वृष्टि निरंतर प्रतिक्षण हो रही है । हम बातों से प्रमाद से इसकी अनुभूति नहीं करते । थोड़ी देर अभ्यास में बैठेंगे, शरीर ढीला, मन में तर्क आदि न हो । राग-द्वेष के विचार न हो । केवल प्रार्थना का भाव लेकर बैठे कि हे प्रभु ! हमें शक्ति दो कि आपकी कृपा प्रसादी को हम ग्रहण कर सके ।

(तदुपरांत आंतरिक अभ्यास । हुआ पुन: प्रवचन हुआ)

ईश्वर कृपा का आनन्द लेने के लिए जो कुछ मैंने अभी निवेदन किया है उसके लिए दो तीन बातें करनी होगी । वैसे तो लाभ सभी को होगा किन्तु यदि पूर्ण लाभ लेना चाहते है तो शरीर को स्वस्थ रखने का प्रयास करें । आम भ्रम है युवकों में कि युवा अवस्था में ईश्वर का नाम लेने की क्या आवश्यकता है, जब बूढ़े होंगे तब ऐसा काम कर लेंगे । और वृद्ध जन कहते हैं की बुढ़ापे में स्वास्थ्य की तरफ ध्यान देने की क्या आवश्यकता है, अब मौत सामने खड़ी है । दोनों गलती पर है । सब सद्गुणों के समूह का नाम 'इश्वर' है । सद्गुणों को अपनाने से भीतर में शांति, आनन्द तथा सुख का अनुभव होता है । इसमें क्या आपत्ति है ? इसी तरह बुढ़ापे में लोगों के शरीर में दर्दे होती है, पीड़ाए होती है, मोतिया उतर आता है, दिखाई नहीं देता । साधना करने बैठते है आसन लगता नहीं, बात बात में क्रोध आ जाता है-- ये सब अस्वस्थता की निशानियाँ है (लक्ष्ण) है । तो क्या वृद्ध व्यक्ति नहीं चाहेंगे की वो रोगमुक्त रहें ? यदि महात्मा गाँधी ७५-७६ साल की आयु में १०-१२ मील की रोज़ सैर कर लिया करते थे और १४ - १५ घंटे रोज़ काम करते थे तो हम क्यों नहीं ऐसा कर सकते ? जहां तक हो सके प्रत्येक व्यक्ति को अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिए । यह भी एक पूजा का अंग है । लोग बाग़ इसको समझते नहीं खास कर हमारी बहनें तो बिलकुल इसकी चिंता हीं नहीं करती है , बीमार रहती है, रोती रहती हैं , परन्तु स्वास्थ्य की तरफ ध्यान नहीं है । अस्वस्थ शरीर, अस्वस्थ मन, यही नर्क है, और नर्क क्या हो सकता है ? इश्वर के समीप जाने के लिए यह भी एक आवश्यक बात है कि हम शरीर को स्वस्थ रखें । मैं इस विषय पर अधिक समय नहीं दूंगा क्योंकि यह मेरा विषय नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति चाहे बुढा हो, स्त्री, बच्चा कोई भी हो, उसे कोशिश करनी चाहिए कि उसका शरीर स्वस्थ रहे । स्वस्थ शरीर हीं साधना कर सकता है । इसके लिए भगवान कृष्ण ने भी गीता में समझाया है, अन्य पुरुष ने भी कहा है और उनके सुझाव भी हैं । कम खाना चाहिए , कम सोना चाहिए , कम बोलना चाहिए । कम मतलब है moderation (बीच का रास्ता) जैसा आपका व्यवसाय है उसके अनुसार आपका भोजन होना चाहिए,जो कुर्सी-मेज़ पर बैठे रहते हैं उनको कम खाना चाहिए । ये बातें प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न भिन्न हैं, एक हीं बात हर व्यक्ति के लिए नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति कितना भोजन खाए । तब भी, जितनी भूख हो उससे १०-१५ प्रतिशत कम खाना चाहिए । भोजन सात्विक, पौष्टिक एवं तुरंत हजम होने वाला हो । जैसे साग सब्जी है, दूध है, चावल है, अनाज़ है–इनका सेवन करना चाहिए । शराब , तम्बाकू आदि से परहेज़ करना चाहिए ।अपने व्यवसाय के अनुसार व्यायाम या सैर करनी चाहिए । मजदूर को सैर करने की या व्यायाम

करने की जरूरत नहीं है परन्तु जो सुबह से लेकर शाम तक कुर्सी पर बैठे रहते हैं उनके लिए जरुरी है की वे कुछ व्यायाम करें । नहीं तो वे जल्द बूढ़े हो जायेंगे, उनको पेशाब में चर्बी या शक्कर जाने लगेगी । और कई प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है । आप सब लोग जानते होंगे । तो शरीर स्वस्थ रखने का प्रयास करना ये भी पूजा का एक महत्वपूर्ण अंग है । जिसका शरीर स्वस्थ नहीं , मन स्वस्थ नहीं, वो भीतर में प्रसन्न नहीं रह सकता । जिसका शरीर स्वस्थ नहीं उसका मन भी रोगी होता है । उसको जल्दी गुस्सा आ जाता है । शरीर स्वस्थ रखिये ।

उसके बाद मन को पवित्र करिए । हम गंगा स्नान करने जाते हैं, अन्य पवित्र स्थानों पर जाते है कि वहां करेंगे तो हम पवित्र हो जायेंगे । बाहर की पवित्रता है इसका भी अपना स्थान है । परन्तु भीतर भी पवित्रता होनी चाहिए । संक्षिप्त में कहूँगा कि मन में राग द्वेष की भावना न हो । घृणा न हो, इर्ष्या की भावना न हो, झूठ बोलने की आदत न हो, किसी को हानि पहुंचाने की आदत न हो । भीतर में प्रेम ज्योति प्रकाशित या विकसित होती रहे । सबसे प्रेम करें क्योंकि प्रेम सर्व व्यापक है । आपकी दृष्टि ऐसी होनी चाहिए कि सब में ईश्वर के दर्शन करें । जब सब में ईश्वर के दर्शन करेंगे तो भीतर में बुराइयां अप्रयास हीं खत्म होती चली जाएँगी । चित्त, बुद्धि एवं हृदय निर्मल होने चाहिए । मन में कोई बुरी भावना न हो , चित्त में पुराने संस्कार न हो, बुद्धि तर्कमय न हो । जब हम इन तीनों से मुक्त हो जाते हैं, तब कहीं पवित्रता आती है । शरीर स्वस्थ हो, भीतर में पवित्रता हो, तत्पश्चात प्रसन्न रहने का प्रयास करें । विनोबा जी ने लिखा है कि प्रसन्नता के अभ्यास से भी ईश्वर के दर्शन हो जाते है यह बात पहले समझ में नहीं आती थी, लेकिन अब यह मानता हूँ कि उनकी बात सत्य है । शत प्रतिशत सत्य है । प्रसन्नता सांसारिक वस्तुओं में नहीं । सिकंदर बादशाह के पास क्या कुछ नहीं था । परन्तु क्या वह प्रसन्न था ? प्रसन्नता किसको आएगी - जिसके भीतर में निर्मलता होगी, जिसके भीतर संतोष होगा, वही तृप्त होगा । इसका मतलब यह नही कि आप काम नहीं करें । अपनी (आर्थिक) अवस्था, अपनी स्थिति को बढाने का अधिकाधिक प्रयास करें, खूब कमायें और देख लें कि क्या उसमें आध्यात्मिकता की प्राप्ति होती है ? दस बीस मकान खड़े कर लीजिये, लोगों की ज़मीन खरीद लीजिये और देखिये की बड़े आदमियों की क्या हालत है ? रात को नींद की गोलियां खा कर सोते हैं तो भी नींद नहीं आती । संतोष होना चाहिए । प्रयास करने के पश्चात भी यदि इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती तो ईश्वर की गति में अपनी गति को मिला देना चाहिए । जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता वो कभी प्रसन्नचित्त नहीं रह

सकता । संतोष हो और यह विचार हो की प्रभु जो करते हैं वह हमारे हित के लिए ही करते हैं ।

शरीर स्वस्थ है, मन निर्मल है तो भीतर में प्रसन्नता है । प्रसन्नता किस वक्त आती है ? निर्मल चित्त होने के बाद मन स्थिर हो जाता है, एकाग्र हो जाता है,संकल्प विकल्प नहीं रहते हैं । संकल्प विकल्प से मुक्त स्थिति में ही प्रसन्नता की अनुभूति होती है । प्रसन्नता के बाद मानसिक शांति की अनुभूति होती है । तत्पश्चात आत्मा की अनुभति होती है । ये कोई कठिन बात नही है जो मैं आपकी सेवा में निवेदन कर रहा हूँ, परन्तु थोडा सा प्रयास करने की आवश्यकता है । माताओं को अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए परन्तु बच्चों के स्वास्थ्य के लिए, उनकी प्रसन्नता के लिए, उनमे अच्छे गुण हो उसके लिए अपने परिवार में, घर में, योग्य वातावरण बनाना चाहिए । माताएं अन्न दाता है । प्रथम शिक्षा वो ही देती है, परन्तु दुःख की बात है कि वे इस तरफ ध्यान नहीं देती । लकीर की फकीर बनी हुई है । हमारी बहिने कोई नहीं जानती कि क्या खाना चाहिए, क्या बनाना चाहिए, कैसे बनाना चाहिए-- कोई नहीं जानता । सबके घरों में दवाइयों के बिल देख लीजिये किसी के घर में दो सौ रुपये महीने का बिल है किसी का चार सौ रुपये महीने का बिल हैं, कोई अस्पताल में घूम रहा है । यह सब अज्ञान के और प्रमाद के कारण है ।

समय थोड़ा है । आप लोग कोशिश करें, जहां तक हो सके आपका शरीर रोगी न हो, मन रोगी न हो । प्रसन्नता का आभास हो, उसके लिए, संतोष वृत्ति हो, ईश्वर जिस परिस्थिति में रखें, उसमें हम संतुष्ट रहे । आप तीन महीने इसका अभ्यास करिये, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ जो साधन मैंने बताया है और ये जो तीन बातें मैंने और निवेदन की है, इसका अभ्यास करिये, आपको ईश्वर की अनुभूति, आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है । प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है चाहे वह बूढा है, बच्चा है, स्त्री है, पुरूष है, कोई भी है ।

एक व्यक्ति विलायत में गया, उनसे पूछा गया कि आप में और फलां महापुरुष में क्या अंतर है ? उन्होंने कहा कि वो तो संत बनाते हैं, मैं गुरु बनाता हूँ और जो साधन है आपकी सेवा में निवेदन कर रहा हूँ, यही साधन वे बतलाते हैं परन्तु मैं सेवक बनाता हूँ क्योंकि मैं स्वयं सेवक हूँ । गुरु केवल परमात्मा है । हमारे दादा गुरु (महात्मा रामचंद्र जी महाराज) कहा करते थे कि जो अपने आप को गुरु कहता है वह गुरु नहीं है । ईश्वर की तुलना हम क्या कर सकते हैं ? उसके मुकाबले में हमारी स्थिति क्या है ? हम सेवक हैं आप भी सब सेवक बनिए । गुरु बनने की चेष्टा छोड़ दीजिये और ये मैंने जो कुछ आपसे कहा है यह बातें आप सबसे

ये नि:संकोच बताईये । पहले आप अपनाइए और आप सब चाहे शिक्षक वर्ग के लोग है मॉनिटर है चाहे अन्य भाई बहन हैं, आप स्वयं इस साधना को एवम इन गुणों को अपनाएं तथा परिवार में, समाज में, सबको बताएं । परमात्मा के सभी नाम है । कोई व्यक्ति शिव भगवान का नाम लेता है, तो लेने दीजिये । कोई 'ॐ' का जाप करता है, कोई 'ॐ नमो शिवाय' करता है, कोई राम का नाम लेता है-- बड़ा अच्छा है । नाम वही है, जिस नाम के लेने से ईश्वर का स्वरूप और उसके गुण हमारे सम्मुख आ जाते हैं; हमारे हृदय में अंकित हो जाते हैं । वास्तव में उस नाम के साथ उस नाम लेने वाले की प्रेम वृत्ति है जिससे लाभ होता है । भाव से लाभ होता है, जिस भाव से आप प्रभु को याद करते हैं उसको हम प्रेम कहते हैं । प्रेम से उसे बुलाईये, प्रेम से उसके चरणों में बैठिये और आपका व्यवहार भी संसार के साथ प्रेम-मय हो । प्रत्येक व्यक्ति आप में से इस बात का प्रचार कर सकते हैं । गुरु का और ईश्वर का यही ऋण है कि आप सुंदर बने शिव भगवान की तरह । भीतर में निर्मलता हो, भगवान शिव ज्ञान गंगा से सबको निर्मल करते हैं । आप भी वही रूप है आपका भी कर्तव्य है आप ईश्वर का ऋण तभी उतार सकेंगे कि पहले आप निर्मल बने, फिर संसार को निर्मल बनाने का प्रयास करें । अपने व्यवहार को प्रेममय, सुन्दर, निर्मल, सेवामय बनाईए । गुरु मत बनिये । अब वह जमाना नहीं रहा कि यह (आध्यात्मिक विद्या की) बातें गुप्त रखी जाए । भीतर का अभ्यास है वह इससे अलहदा है । वह भी करना चाहिए । जिसको वह पूछना है उसको मैं बताने को तैयार हूँ । इसमें कोई गुरु शिष्य बनने की आवश्यकता नहीं है । स्पष्ट बतला सकता हूँ कि परन्तु वह भीतर का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न भिन्न प्रकार का होता है । किसी के भीतर भक्ति की भावना होती है तो उसे भक्ति का अभ्यास बतला दिया जाता है, किसी में ज्ञान वृत्तियों अधिक होती है तो उसे ज्ञान का साधना बतला दिया जाती है । कोई ज्यादा भाग्यशाली होते हैं उनके भीतर में प्रेम जाग उठा है तो उनको प्रेम साधना बतला दी जाती है । तो ये बातें बतलाने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए । किसी तरह सब को आनंद, सुख और शांति मिलनी चाहिए । । ये मेरे अकेले का काम नहीं है आप सब का काम है । इस प्रेम यज्ञ में सबको आहुति डालनी है । जयप्रकाश नारायण यही कहते थे और क्या कहते थे ? लोगों ने समझा नहीं उनको । वो बिहार का शेर क्या कहता था ? Total transformation, पूर्ण क्रांति भीतर की, प्रत्येक व्यक्ति में हो, पर व्यक्तिगत हो । व्यक्ति ही समाज को बना सकता है । हम समाज को बनाने की कोशिश करते हैं, व्यक्ति की को नहीं बनाते । । आप सब को बनाना चाहिए । यदि आप सब स्वयं को बनाने की कोशिश करेंगे तो समाज स्वयं ही बन जाएगा । समाज में अप्रयास ही क्रांति आ जाएगी । आप सब स्वयं सुख, शांति और आनंद को प्राप्त करें एवं इस प्रसादी को समाज में, देश में, बांटने का प्रयास करें । राजनीति में नहीं पड़ना है । किसी का दुर्भाग्य होता है

कि वो राजनीति में पड़ता है क्योंकि वहाँ झूठ शोषण और क्या क्या बुराइयां होती है आप सब लोग जानते हैं । आप अपने अच्छे व्यवहार से देश में क्रांति लाइए । सत्यता की क्रांति लाइए, प्रेम की क्रांति लाइए, सेवा की क्रांति लाइये । पहले अपने पर दया करिये, अहिंसा करिये, अपने आप को पवित्र बनाइए, फिर परिवार में परिवर्तन लाइए, घर में एक आनंद का साम्राज्य बनाइए और फिर उसका विकास करते चले जाइये । गृह सुखी हो जाए, विश्व सुखी हो जाए । यह जरूरी नहीं है कि गिनती के दो चार आदमी जो लीडर अपने आपको कहलाते उन्हीं का काम है । नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को आहुति डालनी है आप सब को काम करना है । छोड़ दीजिये देश को, विश्व को, परन्तु अपने आपको इस अवस्था में रखें कि आपको प्रतिक्षण सुख शांति और आनंद की अनुभूति हो ।

गुरुदेव आप सब का कल्याण करें । ॐ ।

(७)

माया से बच कर रहे हैं

भभुआ,(बिहार) दि० ८-२-१९८२ (प्रातः)

एक छोटी कन्या ने भजन गाया

"मेरे देवता मुझको देना सहारा,
कहीं छछूट जाए न दामन तुम्हारा"

परमात्मा के रास्ते में जो लोग चलते हैं उनके सामने कठिनाइयां आती हैं । उनको चाहिए कि कठिनाइयों को दूर कर लें और माया द्वारा ली गई परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो । क्योंकि यदि परीक्षा में हम फेल हो जाते हैं तो ईश्वर से दूर हो जाते हैं । यह परीक्षा सबकी होती है बिना परीक्षा के किसी को प्रमाणपत्र या डिग्री नहीं मिलती । नारद जी सदा भगवान के पास रहते हैं और निरंतर उनके नाम का उच्चारण करते रहते हैं– 'नारायण', 'नारायण' । भगवान से पूछते हैं कि भगवान माया भी तो आपका रूप है । वह माया किस प्रकार की होती है । भगवान कहते हैं कि कभी बता देंगे, चलिए पहले घूमने चले । रास्ते में भगवान कहते हैं कि प्यास लगी है नारद जी पानी पिलवाइए है । नारद जी लोटा लेकर चलें । भगवान माया का विस्तार करते हैं एक ऐसे देश में पहुंच जाते हैं जहां भील लोग निवास करते हैं । वहां एक कन्या है, श्याम वर्ण की है । उसको देखकर नारद जी मोहित हो जाते हैं, विवाह की बातचीत चलाते हैं, परन्तु कन्या के पिता का अनुरोध है कि विवाह तभी होगा जब वर वहीं रहेगा । अब देखिये एक बाहर की माया है, एक भीतर की माया है । बाहर से देखा तो आकर्षण हुआ । किसको आकर्षण हुआ ? वह भीतर से मन को आकर्षण हुआ । वह मन यह भूल गया है कि भगवान पानी के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे । उसकी चिंता नहीं है । मन कहता है कि क्या हुआ, यही रहने लगेंगे । भगवान सर्वशक्तिमान हैं, वे वहीं पानी पी लेंगे या किसी और से मंगवा कर पी लेंगे । विवाह हो जाता है वहीं रह जाते हैं । इतने महान ऋषि है, निरंतर भगवान के चरणों में रहते हैं, भगवान का सुमिरन करते हैं, ये उनकी हालत हुई । विवाहोपरांत बच्चे हुए एक दिन भगवान की कृपा से ही खूब पानी बरसा और इतना अधिक बरसा कि चारो ओर पानी ही पानी हो गया । ये अपनी स्त्री का हाथ पकड़ कर बच्चों को कंधे में बैठा कर पानी से निकलने लगे पहले पत्नी डूबी, फिर कंधों पर बैठे बच्चे डूबे और जैसे ही स्वयं डूबने लगे तो भीतर से आवाज आई कि अरे, तू तो भगवान के लिए पानी लेने आया था । तूने यह क्या किया ? ज्ञान की आँखें खुली । भगवान के चरणों में पड़े, हाथ बांधे हुए

क्षमा मांग रहे हैं । कहते हैं भगवान मुझे क्षमा करें । मैं पानी लेने गया था अज्ञान में फंस गया । भगवान कहते हैं कि यही तो माया है ।

कोई भी व्यक्ति हो परीक्षा के समय उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । उस वक्त सूझबूझ रहती ही नहीं । खास कर क्रोध में, अहंकार में, इच्छाओं की पूर्ति में, आशाओं में, लालच में, मनुष्य अपनी भीतर का संतुलन खो बैठता है । गीता में भगवान कहते हैं, जब बुद्धि का विनाश हो जाता है तो सब कुछ विनाश हो जाता है, कुछ रहता ही नहीं है । परमार्थ खत्म हो जाता है बुद्धि खत्म हो जाती है, विवेक, वैराग्य खत्म हो जाते हैं । मनुष्य की हालत पशु समान हो जाती है । जब नारद जैसे महर्षि की यह हालत हो सकती है तो हमारी क्या हालत होती है । इसी भावना को लेकर यह बच्ची बड़ी सरलता से पढ रही है कि हे मेरे देवता मुझे सहारा देना कहीं आपका दामन मेरे हाथ से न छूट जाए । यही तुलसीदास जी रामायण में कहते है ।

इंसान को इस रास्ते पर चलते हुए कभी भी अभिमानी नहीं बनना चाहिए कई लोगों को अपना साधना का बड़ा अभिमान होता है, मैं दो घंटे बैठकर अभ्यास करता हूँ, ऐसा सोचते हैं । यदि दीनता नहीं आई तो छह छह घंटे बैठकर साधना करने का भी कोई लाभ नहीं है । लाभ का मतलब यह नहीं कि अभ्यास का फल नहीं होता, फल होता ही है । परन्तु जितने ऊँचेपन की बात आप कर रहे हैं वह नहीं होती । हमारे एक पुराने सत्संगी है, बहुत सरल तबियत के हैं, प्रोफेसर थे, कॉलेज में । जिस दिन लडके घर से काम करके नहीं लाते थे और उनसे वे पूछते थे कि आज काम करके क्यों नहीं लाये, तो जैसे लड़कों की आदत होती है झूठ बोल देते थे । तो वे कहते थे कि इस पाप की सजा मुझे मिलनी चाहिए क्योंकि मेरे कारण तुमने यह काम नहीं किया । अपने कान पकड़कर उठक बैठक करने लग जाते हैं । सजा अपने ऊपर ले लेते । ये है सरलता ये हैं दीनता । उनसे बात करके देखिये तो जैसे दो साल का सरल बच्चा तोतली निष्कपट बातें करता है, ऐसे वे प्रोफेसर साहब बातें करते हैं । तो हमें सतर्क रहना चाहिए, जागरूक रहना चाहिए । एक सज्जन एक भजन पढ़ा करते थे, ‘उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है’ । प्रतिक्षण अज्ञान से मोह से, अहंकार से, हर वक्त जागृत रहना चाहिए और ईश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिए । क्योंकि इन शत्रुओं से केवल ईश्वर ही हमारी रक्षा कर सकता है । अपनी विद्या पर, अपनी धन दौलत पर, अपनी अन्य वस्तुओं पर कभी कोई भरोसा नहीं करना चाहिए । ईश्वर की शरणागत होना चाहिए । यह जागृति प्रतिक्षण बनी रहनी चाहिए । प्रतिक्षण प्रार्थना करते रहना चाहिए कि हे प्रभु ! मेरे में बल नहीं है, मेरे में शक्ति नहीं है, यदि आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो मेरी संभाल करने वाला कोई नहीं है ।

"**अहंकार से प्रभु नहीं मिलते चाहे कोई भी साधन करिये दीनता को तो अपनाना हीं होगा**" । और कुछ नहीं है केवल 'तू ही तू है' । जितने महापुरुष हुए हैं उनके मुंह से यही शब्द निकलते हैं 'तू ही तू है, तू है तू है' । हिरण्यकश्यप को किसने मारा ? अहंकार ने, वह अपने आप ही मारा गया । प्रहलाद को किसने बचाया ? उसकी दीनता ने । हजरत मूसा ईश्वर के दर्शन करने के लिए तूर पर जा रहे हैं, रास्ते में शैतान मिलता है, (मुसलमान लोग माया को शैतान कहते हैं) । पूछता है हजरत कहाँ जा रहे हैं ? "ईश्वर के दर्शनों के लिए ।" कहता है कि आप बड़े भोले लगते हैं, खाली हाथ इश्वर के दर्शनों के लिए जा रहे हैं ।

हम लोग तर्क करते हैं कि ईश्वर को किस चीज की जरूरत है कि उसके लिए कोई प्रसाद लेकर जाए । प्रसाद की गुरु को जरूरत नहीं, ईश्वर को जरूरत नहीं, आप लाते हैं वो बांट दिया जाता है । परन्तु इस प्रसाद के साथ जो का भाव है, वो आप अर्पण करते हैं और वही भाव आपको बनाता है । यदि श्रद्धा से प्रेम से दीनता से लाते हैं तो वो दीन भाव, श्रद्धा भाव, प्रेम भाव आपको बनाता है । उसका बदला आपको आशीर्वाद से मिलता है । किसी भी महापुरूष की सेवा में जाए खाली हाथ नहीं जाना चाहिए । चाहे एक फूल ही लेकर जाएं, तुलसी का पत्ता ले जाए, कोई वृक्ष का पत्ता ले जाए, उसके साथ आपको मन की भावनाओं को अर्पण करना है । तो शैतान कहता है "हजरत क्या उपहार ईश्वर के लिए ले जा रहे हैं ?" तो हजरत मूसा फरमाते हैं कि परमात्मा को किस चीज की आवश्यकता है ? उसके पास तो किसी वस्तु की कमी नहीं है ? ये बात मैंने स्वामी शिवानंद जी की एक पुस्तक में पढी है कि कुछ लोग तर्क करते हैं परन्तु उसके साथ यह नहीं अनुभव करते इस प्रसाद के साथ जो हमारा भाव है उसको जागृत करना है । शैतान समझाता है कि उपहार लेकर जाना चाहिए । हजरत पूछते हैं कि क्या ले कर जाऊं ? तो शैतान कहता है कि दीनता (नियाज़मंदी) लेकर जाना चाहिए । दीनता कोई वस्तु नहीं है, किसी हलवाई की दुकान पर नहीं मिलेगी, वो भीतर का भाव है । जैसे ही दीनता भाव आपके अंदर बन गया, ईश्वर कहाँ दूर है ? वो तो आपके पास है । जहाँ आप हैं वही दर्शन होंगे, कहीं दूसरी जगह जाने की जरूरत नहीं है । दीनता को अपनाइए ।

यह माया जब हजरत मूसा जैसे महापुरुषों को भुलावे में डाल सकती है तो हम आप किस गिनती में हैं । इसलिए माया से बचकर रहना चाहिए, ईश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिए ,कभी अपने ऊपर भरोसा नहीं करना चाहिए । गलती न होना यह तो एक असंभव सी बात है अंग्रेजी की एक कहावत है To err is human (गलती करना मनुष्य का स्वभाव है) परन्तु गलती करके उसके लिए पश्चाताप करना, ईश्वर से क्षमा मांग लेना, आगे के लिए तौबा करना

यही हमारी साधना है । इस रास्ते पर आज तक कोई ऐसा नहीं हुआ जो गिरा न हो । हम भी गिरेंगे परन्तु प्रेरणा भी मिलती है कि यदि हम हृदय से, सत्यता से, प्रभु से क्षमा मांगेगे और पश्चाताप करेंगे और आगे के लिए संकल्प करेंगे और कोशिश करेंगे कि गलतियां न हो तो प्रभु क्षमा कर देते हैं । कैसे पता लगे कि क्षमा मिल गई ? आपके भीतर में उसका संस्कार नहीं बनेगा । वो संस्कार आपकी वृत्ति में विकसित नहीं होगा । उसकी स्मृति आपके हृदय में नहीं रहेगी ।

प्रार्थना से हमें प्रभु की कृपा-प्रसादी मिलती है जो हर वक्त हमारा मार्ग दर्शन करती रहती है । हृदय की गहराई से प्रार्थना करें कि हे प्रभु ! हमारी रक्षा करो । ये रास्ता बडा कठिन है । मुसलमानों में इसे पुल-सरात कहते हैं । ये एक बड़ा संकरा पुल है जिसमें से गुजरना पड़ता है । ये बिना गुरु की सहायता के पार नहीं हो पाता ।

तो ईश्वर से गुरु से उसकी कृपा के लिए दीनता पूर्वक प्रार्थना करते रहना चाहिए । इससे रास्ता सरल हो जाता है ।

गुरुदेव आप सब का भला करें ।

राम संदेश, नवंबर १९८२

(८)

इच्छाओं को कम करो

बांदीकुई, दि० १४-२-१९८२ (सायं)

मनुष्य के सारे दुखों का कारण एक ही है, वह है इच्छाएं । इच्छाओं को जितना बढाते चले जाओ, जितनी उनकी पूर्ति करते चले जाओ, यह यज्ञ में आहुति डालने की तरह है । अग्नि कभी शांत नहीं होती है इच्छाएं भी कभी खत्म होने पर नहीं आती कुछ महापुरुषों का कहना है (संतों का नहीं, अर्थशास्त्रियों का है) कि जब तक इच्छाओं को नहीं बढ़ाया जाएगा, तब तक देश की आर्थिक उन्नति नहीं होगी । यह कुछ हद तक ठीक है । परंतु यदि हम उन मनुष्यों के विषय में सोचे जिन्हें संसार में भिन्न तरीका अपनाया है तो उन्हें परमात्मा के रास्ते में चलने के लिए सादा और सरल जीवन अपनाना होगा । जो व्यक्ति इच्छाओं को बढाता जाता है वह परमार्थ के रास्ते पर चलने का अधिकारी नहीं बन सकता । उदाहरण दिया जाता है कि महाराज जनक के पास कितनी धन संपत्ति थी में कितने ज्ञानी थे परन्तु क्या हम जनक जी की तरह अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं ? सब कुछ होते हुए भी उनकी किसी वस्तु से आसक्ति नहीं थी । सुखदेव जी उनके पास गए हैं, संन्यासी थे, केवल एक कमंडल ही था । पहली मुलाकात में जनक जी की ओर से सुखदेव जी के ज्ञानी होने का पूर्णविश्वास नहीं हुआ । महाराज जनक ने एक लीला रची कि उनके महल में आग लग गई । कर्मचारियों ने आकर सूचना दी परन्तु ऐसे गंभीर परिस्थिति में भी वे शांत थे । मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ । सुखदेव जी का कमंडल महल में रह गया था । कहते हैं कि राजन मेरा कमंडल भीतर रह गया है । तो महाराज जनक कहते हैं कि मेरा तो महल जल रहा है तो मुझे कुछ चिंता नहीं है तुम अपने एक कमंडल के लिए इतनी चिंतित हो रहे हो । तुम तो ज्ञान का, त्याग का, उपदेश लेने आए थे । तुम्हारी यह क्या अवस्था है ?

महाराज जनक जैसे महान ज्ञानी और त्यागी के उदाहरण देना हमारे लिए उचित नहीं है । हमें उदाहरण देना चाहिए महात्मा गांधी का । उनका जीवन कितना सादा था । विलायत गये हैं वहां के सम्राट से भी मिले हैं, तो भी एक साधारण सी धोती में है, ऊपर से एक चादर लपेटी हुई है और वहां सर्दी में उन्हीं कपड़ों में संतुष्ट और शांत थे । शेष जितने लोग उस गोल मेज कॉन्फ्रेंस में गए थे वे बड़े बहुमूल्य वस्त्र पहने थे । फिर भी वहीं वहां कदर किसकी हुई उस त्याग मूर्ति महात्मा गांधी की ।

इस रास्ते पर चलने वालों को अपनी इच्छाओं को कम से कम करना चाहिए । गुरु महाराज (महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) कहा करते थे कि यदि घर पे दो जोड़ी धोती के हैं । तो यह सोचना चाहिए कि क्या तीसरे खरीदने की आवश्यकता है ? यदि नहीं है, तो मत खरीदो । यदि भगवान ने आपको पैसा दिया है तो वह गरीब रिश्तेदारों में बांट दो । अन्य गरीबों में

बाँट दो । पैसे का सदुपयोग करो ईश्वर के प्रति कृतज्ञता यही है कि उसके देन, जो पैसा है, उसका सदुपयोग करो । अपने ऊपर कम से कम व्यय करो । अपनी इच्छा को यदि आप बढ़ाते हैं और उसकी पूर्ति नहीं होती है तो इससे आपके मन में निराशा उत्पन्न होती है, क्रोध उत्पन्न होता है । क्रोध से समता जाती रहती है और जब समता नहीं रहती है तो बुद्धि के विनाश से सब कुछ नाश हो जाता है । महात्मा बुद्ध ने मनुष्य के सारे दुखों का कारण इच्छाएँ बतलाया है और यह सत्य है । जब तक मनुष्य त्याग वृत्ति नहीं अपनाएगा तब तक सत्य गति प्राप्त नहीं होगी । आप कहेंगे कि त्याग वृत्ति क्या है ? हम बाल बच्चेदार है, घर में रहते हैं, किस चीज को त्याग दें । आजकल तो वैसे ही इतनी महंगाई है, त्याग वृत्ति कैसे अपनाएं ? त्यागने को बहुत कुछ है, महात्मा बुद्ध का यह कहना है । आप घर को त्याग दीजिये आप साफ सुथरे धुले हुए कपड़े ना पहने किसी भी महापुरूष का यह कथन नहीं है । गुरु महाराज कहा करते थे कि जिस परिस्थिति में प्रभु ने आपको रखा है उस स्थिति के साथ अपना जीवन व्यतीत करें । परंतु यदि किसी कारण आपके पास धन नहीं है, आप पड़ोसी को देखते हैं कि उसने मकान बनाया है, उसने गाडी खरीदी है, वो अच्छे अच्छे कपडे पहनता है, उसके बच्चे कान्वेंट स्कूल में पढ़ते हैं, तो मन में इच्छा होती है हम भी ऐसा ही करें । यह गलत बात है । जिस की परिस्थिति में है उसमें संतुष्ट रहना चाहिए ।

ईश्वर ने आपको विवेक और बुद्धि दिए हैं, खूब कमाईए है परन्तु यदि सफलता नहीं मिलती है तो संतोष रखिए । दूसरों को देखकर इर्ष्या मत करिये । जो आध्यात्मिक पथ पर चल रहे हैं और जिनकी आयु ५० -६० वर्ष हो गई है, अपनी इच्छाओं को जितना कम कर सके करें । उनको अपना जीवन सादा और सरल बना बना लेना चाहिए । प्रयास करना चाहिए कि जीवन सादा हो, खान पान सात्विक और सादा हो । मिर्च-मसाले घी आदि वस्तुएं बहुत कम खाएं । दूध घी कम सेवन करें । बच्चों के लिए यह बात लागू नहीं है, बच्चे खूब खाएं, खूब पहने क्योंकि जब तक संसारी पदार्थों को भोगेंगे नहीं तब तक उनको यह पता नहीं लगेगा कि उनका क्या सार है । यह जो कुछ भी है मैं निवेदन कर रहा हूँ यह उन भाइयों के लिए है जो ५० - ६० साल के हो गए हैं । वे अपने जीवन को सादा और सरल बनाएं और इच्छाओं को कम करें । महात्मा गांधी एक कागज के टुकड़े को भी जाया (बेकार) नहीं करते थे । एक बार लाहौर में लोगों ने उनके विरोध में कुछ छपे हुए पर्चे उनके ऊपर फेंके । गांधी जी नाराज नहीं हुए । उसे इश्तेहार पर एक तरफ कुछ लिखा हुआ था और दूसरे तरफ खाली था । उन्होंने स्वयं सेवकों से कहा कि सारे इश्तहार इकट्ठे कर लो । एक तरफ तो उनके लिए बुरा भला लिखा हुआ है परंतु दूसरी ओर तो खाली है । उसके लिए गांधी जी ने कहा कि मैं इनको काम में लाऊंगा । उस वक्त लोगों ने उनकी हंसी उड़ाई । यह लगभग चालीस पैंतालीस साल पहले की बात है, परन्तु आज मनुष्य कूड़े करकट में से बीने हुए कागजों के गंदे टुकड़े का भी उपयोग करने लगे हैं । इसकी खाद बनाते हैं, इंधन बनाते हैं, कपडा, कागज तथा अन्य वस्तुएं भी बनाते हैं । समय आ गया है कि मनुष्य समझ गया है कि

किसी चीज को भी व्यर्थ नहीं गंवा देना चाहिए । मेरा कहने का मतलब यह है कि आप अपनी इच्छाओं को कम करें ।

यदि इच्छाएं अधिक होती है तो विचार अधिक आते हैं । जिस व्यक्ति के भीतर में विचार अधिक उठेंगे उसके मन में स्थिरता नहीं होगी, शांति नहीं होगी और आनंद नहीं होगा । एक दार्शनिक ने लिखा है, "My richness consist in my smallness of wants" मेरी अमीरी मेरी इच्छाओं की कमी में है । जिस मनुष्य की आय दो हजार रुपये, महीने का है और वह तीन हजार रुपये खर्च करता है एक हजार रुपये उधार लेता है तो वह गरीब बन गया । हजार रुपये उधार लेना उसका सूद देना ऊपर से लोगों की बातें सुनना, वो तो कंगाल बन गया । दूसरा व्यक्ति है उसका मासिक पांच सौ रुपये हैं वो साढ़े चार सौ रुपये खर्च करते हैं और पचास रुपये जमा करता है, वो अमीर है । उसको किसी का देना नहीं है जिसको किसी को देना नहीं है वह भीतर से प्रसन्न रहेगा । उसके सिर पर कोई बोझ नहीं होगा । रात को आराम से सोयेगा । जिसे कर्जा देना है वो कभी भी आराम की नींद नहीं सो सकता । तो महात्मा बुद्ध का यह कहना शत प्रतिशत सही था कि जितने हमारे मानसिक रोग हैं, कष्ट हैं, दुःख है, उनका मुख्य कारण इच्छाएं और उनका बढ़ाना है । सिकंदर बादशाह के पास कितना धन और दौलत थी । क्या उसकी इच्छाओं की पूर्ति हो गई ? एक फकीर के पास गया, उसको धन देने लगा, वो फकीर कहने लगा-- अरे, तुम खुद ही भिखारी हो, भिखारी से मैं क्या लूंगा । तुम तो हर वक्त यही सोचते रहते हो कि और धन हो, और धन हो । प्रार्थना भी ईश्वर से करते हो तो धन ही मांगते हो । मैं तुमसे क्या मांगू ? जिसके भीतर में बहुत इच्छाएं होती है, उसका जीवन शांतिमय नहीं होता, वो भिखारी है उसको कभी तृप्ति नहीं हो सकती । हमारी साधना है, 'संतोष' ।

पांच यम हैं, पांच नियम है । पहला नियम है, 'शौच' । स्नान करना, शरीर को पवित्र करना और मन को पवित्र करना । दूसरा नियम है 'संतोष' । जिस हाल में प्रभु ने रखा उसमें संतुष्ट रहना । यदि हम अपनी इच्छाओं को बढाते चले जाएंगे तो 'संतोष' नहीं होगा । जो कुछ भगवान ने दिया है उसमें संतोष संतुष्ट रहना है, और जो कुछ भगवान हमारे लिए करते हैं उसकी गति में अपनी गति मिला देना ही 'संतोष' है । सब महापुरुषों का यही कहना है कि अपनी इच्छाओं को कम करो । इच्छाएं कम कब होती है-- जब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं, गुरु से प्रेम करते हैं, अपने इष्ट देव से प्रेम करते हैं । अपने ऊपर कम से कम खर्च करें । जब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं तो जो कुछ हमें प्रभु ने दिया है, वो ईश्वर को अर्पण कर देते हैं । उसके साथ आसक्ति नहीं रखते, इच्छाएं धीरे धीरे खत्म हो जाती है । आदमी को जब मृत्यु होने को होती है तो लोग उससे पूछते हैं कि आपका कोई इच्छा हो तो बता दो । इच्छाएं ही दुःख का कारण है । कोशिश करते हैं कि यदि मरने वाले व्यक्ति की कोई इच्छा होतो उसकी पूर्ति हो जाये नहीं तो उसे दूसरा जन्म मिलेगा जिसमें उसे वह भोग भोगना पड़ेगा । तृप्ति, संतोष इसका अभ्यास करना

चाहिए । प्रेम साधना में संतोष एक आवश्यक अंग है, कभी भी संतुष्ट नहीं होना चाहिए । अतृप्ति असंतोष प्रभु के प्रेम में बाधा करती है । "नाम जपत तृष्णा सब बुझी"-- तृष्णा एक आग है ये प्रभु प्रेम में बुझाई जाती है । प्रभु-प्रेम से तृप्ति होती है, एक अथाह अवर्णनीय तृप्ति होती है । प्रभु का प्रेम मिल जाता है तो सब कुछ मिल जाता है यहां तक कि साधक को मुक्ति की भी इच्छा नहीं होती । जो प्रभु से प्रेम करते हैं उनकी सहज ही, अप्रयास ही त्याग वृत्ति हो जाती है । उनका अपने शरीर के साथ भी लगाव नहीं रहता सब के साथ योग्य व्यवहार करते हैं सबकी योग्य सेवा करते हैं, परन्तु वह सेवा चिपकाव के साथ नहीं है, एक सेवा के भाव में है । जब तक संसार में संतुष्टि और तृप्ति नहीं है तब तक मन चंचल रहेगा ।

एक और और भी बात है कि अधिक धन बिना पाप किए हुए नहीं इकट्ठा होता है । हजारों आदमियों में से किसी एक को भगवान कोई लॉटरी दिलवा दें, कहीं जमीन खोदे, और उसमें से धन मिल जाए अन्यथा बिना शोषण कीए धन नहीं इकट्ठा होता है । हशोषण करना भी पाप है । परन्तु मनुष्य करता है उसका स्वभाव है कोई व्यक्ति शोषण से मुक्त नहीं है । आजकल देश में जो कुछ हो रहा है उसके लिए सभी लोग कहते हैं कि बड़ा Corruption (भ्रष्टाचार) हो रहा है, बड़ी रिश्वतखोरी है, बड़ा Black Market (काला बाजार) चल रहा है, नंबर दो का व्यापार चल रहा है, या क्या है ? ये सब पाप है । लोगों से कहते हैं कि सच्चाई का व्यवहार करना चाहिए तो कहते हैं कि कोशिश तो करते हैं किन्तु सरकार ने कुछ ऐसा ही वातावरण खड़ा कर दिया है कि सत्यता का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं मगर व्यतीत नहीं कर सकते । लोग मजबूर हैं, कुछ लोग इस प्रकार से मजबूर है कि जो सत्य का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं उनके दफ्तर वाले उनको नही जीने देते । झूठे केस उसके खिलाफ बना देते हैं । परंतु जिसने जीवन की बाजी लगाई है वह इन बातों की चिंता नहीं करता । मजदूरी कर लेगा परंतु पाप की कमाई का भोजन नहीं खाएगा । यदि कबीर साहब चाहते तो क्या आराम का जीवन व्यतीत नहीं कर सकते थे । धनी धर्मदास उन के शिष्य थे, जो अरबपति थे, तो क्या उन्हें किसी प्रकार की कमी हो सकती थी । संत रविदास जी को उनकी भक्त रानी झाला एक अमूल्य हीरा देकर गई थी । उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि मेरे गुरु मेरे टूटी फूटी झोपड़ी में रहते हैं, और जुती गाँठ कर जीविका कमाते हैं । रानी ने कहा–"गुरुदेव, आपको इस दशा में देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है । आप इस हीरे को बेंच कर अपनी दशा सुधारिये । इस एक हीरे का इतना मूल्य है जिससे आप कई गांव खरीद सकते हैं, आप ही नहीं आपकी कई पीढियां उससे सुख भोगेंगी ।" संत जी ने कहा कि ठीक है, इसे रख दो । एक वर्ष के बाद पुनः दर्शन करने रानी आई और उनकी वही स्थिति देखकर गुरुदेव से पूछती हैं कि क्या आपने उस हीरे का उपयोग नहीं किया उसे बेचा नहीं ? संत जी बोले कि जहां रख गई थी वहीं देख लें । उनको उन्हें उस हीरे से कोई मोह नहीं है कोई प्रलोभन नहीं है । रानी ने देखा तो जहाँ रख गयी थी हीरा वहीं पड़ा था । तो कितनी संतोष की शक्ति है यह कि पास में करोड़ों

रुपये का धन पड़ा हो, परन्तु तनिक भी प्रलोभन नहीं होता ।---- क्यों ? उनके भीतर में इतना आनंद है कि एक हीरा नहीं, हजारों हीरे वह रानी छोड़ जाती तो भी वे उस आनंद की तुलना नहीं कर सकते ।

ईश्वर प्रेम में ऐसा आनंद है कि सहज में ही जब उस आनंद की प्राप्ति हो जाती है तब इच्छा कुछ रहती ही नहीं । फिर वह व्यक्ति पाप कर ही नहीं सकता । स्वामी राम कृष्ण परमहंस के पास यदि कोई पैसा आदि रख देता था तो वे बेचैन उठते थे, मानो बिच्छू ने डंक मार दिया हो । तो माया होती पापों से ही इकट्ठी है । पाप में लिप्त व्यक्ति को कैसे शांति मिल सकती है । हमारे भीतर में पाप है, पाप की कमाई खाते हैं, इसलिए संसार के पदार्थ में तृप्त नहीं कर पाते । यह कठोरता है, यहीं पत्थर दिल होना है, यह कोमलता नहीं है । विवेकानंद जी बड़े तर्क मिजाज़ के थे । कहने लगे कि स्वामी जी को धन का स्पर्श असहय है , यह कैसे हो सकता है । एक दिन

धन का स्पर्श ऐसा ही है यह कैसे हो सकता है एक दिन आपने उनके बीच होने के नीचे कुछ पैसे रख दिए स्वामी जी जब बिस्तर पर बैठे तो बैठ नहीं पाए उन्हें ऐसा लगा कि बिच्छू ने काट लिया हो में पीड़ा से व्याकुल हो उठे देखा तो बिस्तर के नीचे कुछ पैसे रखे थे जान गए कि यह कर्म विवेकानंद जी का हैजो एक कोने में स्तब्ध लज्जित हुए मन्नात मस्तक खड़े थे स्वामीजी सहनशीलता करुणा की मूर्ति थी उन्होंने कहा कोई बात नहीं यह कार्य नरेंद्र विवेकानंद के सिवायऔर कोई नहीं कर सकता है बुरा नहीं बनाया कहने का मतलब यह है कि महापुरुषों को पाप की कमाई से कोई वास्ता नहीं दूर दूर रहते हैं माया के हर रूप से वे दूर रहते हैं तोऐसा तभी हो सकता है जब हम अपने जीवन को सादा बनाएं एवं अपनी इच्छाओं को कम करें जैसा मैंने अभी निवेदन किया था कि अधिक इच्छाओं की जब पूर्ति नहीं होहोती तो क्रोध आता है क्रोध से मन विषैला हो जाता है वह साधना के लायक नहीं रहता और पाप की कमाई से मन कठोर हो जाता हैइसमें करुणा नहीं रहते इसमें कोमलता नहीं रहती अधिकार खो बैठता है जब अधिक पैसा आ जाता है तो हम और कई प्रकार के पाप करते हैं जिससे हमारा समाज खराब हो जाता हैहमारे विचार खराब हो जाते हैं हमारा वातावरण खराब हो जाता है यह बातें आप सब जानते ही हैं ये सब साधन के लिए उपयोगी नहीं है जितना जरूरी है उतना तो अपने लिए आजकल के जमाजमाने में रखना चाहिए उससे अधिक जमा नहीं करना चाहिए अधिकारी के लिए जिज्ञासु के लिए शांति चाहिएपवित्रता होनी चाहिए पाप की कमाई से पवित्रता कभी

नहीं आ सकती आप कितना ही भजन कर लें यदि पाप की कमाई करते हैं तो अंतर में पवित्रता आ ही नहीं सकती ।

महात्मा बुद्ध के आठ साधन है । पहला साधन है , शुद्ध कमाई का भोजन हो । स्व निरीक्षण कीजिये और देखिये कि क्या आपकी कमाई पवित्र हैं । कोई एकाध आदमी ऐसा होगा । पवित्र कमाई से आए सामान का भोजन बनाने वाले का मन और आचरण शुद्ध होना चाहिए । श्रद्धा पूर्वक ईश्वर की याद में वह भोजन बनाए । भोजन करते समय केवल ईश्वर की याद हो अन्य कोई विचार न हो । यदि व्यक्ति इतना ही कर लें तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वह आत्मा का साक्षात्कार कर लेगा । शुद्ध कमाई, शुद्ध तरीके से बनाया गया भोजन और शुद्ध वातावरण में वह भोजन खाया जाये, उसी से भीतर शुद्धता आएगी और शुद्धता ही साधक को अधिकारी बना देगी । इसलिए पूरब मैं हर एक व्यक्ति अपना भोजन अलहदा बनाता है । उसके पीछे जो सार है वह तो भूल गए परन्तु अब लड़ाई झगड़े खड़े हो गए कि मेरे रसोई घर में कोई प्रवेश नहीं कर सकता । बर्तनों को मांजे जाते हैं लेकिन मंज्नें की असली वस्तु तो मन है । ठीक है कि बर्तनों को साफ रखना उचित है परंतु मन को मांजो, खूब मांजो -- प्रभु प्रेम से । इसी तरह शुद्ध भोजन है । शुद्ध व्यवसाय हो यानि जो काम आप करें उसकी कमाई पवित्र हो ।

जरा गहराई से देखिये तो हमारा जीवन पवित्र नहीं है । लोग दफ्तरों में काम करते हैं तो स्टेशनरी घर ले आते हैं । रेलगाड़ियों में चढ़ते हैं तो टिकट नहीं लेते, ऐसी कई बातें हम करते हैं । वो हमारी एक आदत बन गई है । सरकारी टेलीफोन से टेलीफोन करते हैं । भाई साहब को टेलीफोन कर रहे हैं और कर रहे हैं चोरी करके, यह क्या चीज बताता है । मैं किसी की आलोचना नहीं करता । मैं इन बातों से गुजरा हूँ, मैंने खुद किए हैं और अति हो जाती है । परंतु यह कहना कि सत्य की बातें हैं, यह गलत है । इन बातों को छोड़ना चाहिए सरकारी टेलीफोन लगा है तो उसका उपयोग सरकारी काम में करो । जहाँ प्राइवेट काम है वहां उसका उपयोग मत करो । और जहां जरूरत ही नहीं है वहां उठाया और खामखाँ टेलीफोन कर दिया । यह एक हमारी बहिन है वह दिन में एक बार टेलीफोन जरूर करती हैं बाहर से । वह टेलीफोन के महकमे में हैं उनके पैसे नहीं लगते, अब यदि उनके मुंह पर कह दें कि बेटी तुम चोरी करती हो, ऐसा न करो, तो बुरा मान जाएगी, यह सोच कर चुप कर जाता हूँ । मगर यह मेरी कमजोरी है । मुझे उससे किसी दिन कहना चाहिए । इस प्रकार और कई भाई हैं जो सरकारी टेलीफोन का दुरुपयोग करते हैं । इसी तरह दुकानदार है-- टैक्स की चोरी, नंबर दो का काम, ये

तो पाप की कमाई है । पाप की कमाई से बनाया हुआ भोजन कभी भी मन को शांति नहीं दे सकता । मन चंचल रहेगा, क्रोध आएगा । अब कहना तो नहीं चाहिए इस तरह तो सरकारी नौकर भी करते हैं । सरकार के नियम तो यह है कि सरकारी कर्मचारियों को कोई प्राइवेट काम नहीं करना चाहिए, परन्तु लोग करते हैं । पत्नी के नाम पर कोई व्यवसाय कर लिया । दफ्तर के काम पूरे नहीं करते हैं । उसी काम में लगे रहते हैं । बहुत सारी बातें आप सब लोग देखेंगे तो पाएंगे कि हम तो ईमानदारी से काम नहीं कर रहे हैं । तो भगवान बुद्ध का कहने का मतलब यह है कि अयोग्य इच्छाओं का त्याग करें । यदि मन की चंचलता से बचना चाहते हो तो उसके लिए उचित है कि संतोष का जीवन व्यतीत करें ।

प्रत्येक साधक को अपना काम स्वयं करना चाहिए । महीने में कम से कम एक बार सत्संगियों के जो नियम हैं उनका भली प्रकार अध्ययन करना चाहिए । और उन पर चलने का प्रयत्न करना चाहिए । चाहे आप आयु में कितने भी बड़े हो गए हों, तो भी कुछ न कुछ काम करते रहना चाहिए, जिससे आप किसी के अधिक आश्रित बन कर ना रह जाए, और चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, संतोष का जीवन बनाए यानि ईश्वर की गति में अपनी गति मिला दें ।

गुरुदेव आप सबको संतोष की वृत्ति दे ।

राम संदेश, दिसंबर १९८५

(९)

सत्, संतोष विचार और शांति

बांदीकुई, दि० १५-२-१९८२ प्रात:

संतों को, महापुरुषों को, गरीबी प्रिय है । दुर्योधन भगवान कृष्ण से पूछते हैं कि आप विदुर जी की टूटी फूटी झोपड़ी में क्या करने जाते हैं । मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप मेरे महलों में आकर ठहरे । वहां छत्तीस प्रकार के भोजन है, आपकी सेवा के लिए नौकर हैं, सब प्रकार के सुख उपलब्ध है, फिर भी आप उस टूटी फूटी झोपड़ी में क्या करने जाते हैं । भगवान ने उत्तर दिया है कि उस झोपड़ी में आनंद है, सुख है, शांति है, ईश्वर का गुणगान है, वहां विशेष आत्मिक रस मिलता है । उस गरीब की कुटिया में वह आनंद है जिसकी तुम्हें स्वप्न में भी झलक नहीं मिल सकती । तुम्हारे बड़े बड़े महल होंगे परन्तु वहां आत्मिक सुख नहीं है, आत्मिक आनंद नहीं है, क्या करूँ तुम्हारे महलों में आकर ? दुर्योधन लज्जित हुआ ।

इसी प्रकार गुरु नानक देव एक बढ़ई के घर पर ठहरे हैं, वहां के नवाब ने गुरुदेव से कहा है कि उस गरीब बढई के घर में किसी प्रकार का सुख नहीं है । आप मेरे महलों में आकर ठहरे, मेरे यहाँ भोजन करें । गुरुदेव ने कहा कि ठीक है आपके महलों में ठहरूंगा तो बाद में पहले आप अपना भोजन लाइए और उस गरीब बढई के घर से भी भोजन मंगवाया है, एक हाथ में उस गरीब का भोजन, दूसरे हाथ में नवाब साहब का भोजन है । नवाब साहब के भोजन से खून टपकता था और उस गरीब बढ़ई के भोजन से दूध टपकता था । नवाब से कहा, देखिये मैं आपके महल में क्या करने आऊं, क्या यह खून पीने आऊँ । तुम ने तो गरीब प्रजा का शोषण कर के धन कमाया है । तुम तो कसाई हो ,तुम्हारे घर में आकर मैं क्या करूँ ? वो बढ़ई दीन है, उसके भीतर में ईश्वर का प्रेम है, तुम ही बताओ, कि मैं उसके घर कैसे न ठहरूं ? जिस परिवार में सुख शांति और आनंद नहीं है, उस परिवार में चाहे जीवन की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, किन्तु यदि वहां प्रेम नहीं है, आनंद नहीं है, तो वहां का जीवन क्या जीवन है ।

भगवान राम युवावस्था में है, उदास रहते हैं । राजा दशरथ के अति प्रिय पुत्र थे । राजा बड़े सोच में हैं कि राम उदासीन क्यों रहते हैं । वैद्यों को दिखाया, ऋषि मुनियों को दिखाया परन्तु उन के भीतर की उदासीनता का कारण कोई नहीं जान सका । अंत में राजकुल

के गुरु वशिष्ठ जी को बुलाया गया है । उन्होंने राम से बात की है, राम कहते हैं कि इन महलों में मेरा मन नहीं लगता । मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं घर से बाहर जाऊं और प्रभु चिंतन करूं । मुझे यहां के कथित सुख, कथित प्रलोभन कांटों की तरह लगते हैं । वशिष्ठ जी ने राम को उपदेश दिया है जो 'योग वशिष्ठ' में लिखा है । उस बालक की उदासीनता को दूर करने के लिए जो उपदेश दिया है वह सब के लिए भी है । वशिष्ठ जी ने बतलाया है कि जंगलों में जाओ या घर में रहो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता । मन में शांति होनी चाहिए, तुम्हें तो चक्रवर्ती राजा बनना है, अपने कर्तव्य को निभाना है । तुम जंगलों में जाकर यदि अपने कर्तव्य को नहीं निभा सकोगे तो अधर्मी कहलाओगे । तुम क्षत्रिय नहीं कहलाओगे, संसार तुम्हें भला बुरा कहेगा । इसलिए तुम घर में ही रहकर साधन करो, तुम्हें जिस शांति की खोज है, अभीप्सा है, तड़प है, वह यही मिलेगी । चाहे कुटिया हो, गरीबी हो, अमीरी हो, जहां प्रभु का नाम नहीं है, प्रभु का प्रेम नहीं है, सुख, शांति, और आनंद नहीं है, वहां का वातावरण दुःख का होता है । भीतर में कांटे जैसे चुभतें हैं इस प्रकार का होता है ।

वशिष्ठ जी ने अपने उपदेश में चार मुख्य बातें बताई हैं । (१) सत् (२) संतोष (३)विचार (४)शांति । सत् का विस्तार तो भगवान बुद्ध ने बहुत किया है । उसी सत् का उपदेश वशिष्ठ जी ने राम को दिया था । मानसिक सत्, व्यवहारिक सत्, विचार का सत्, वातावरण का सत्, इसी सत् को हम कहते हैं "तन में राम, मन में राम, रोम रोम में राम ही राम" । भीतर में परमात्मा है बाहर में भी परमात्मा है, विचारों में परमात्मा है, हमारे विश्वास प्रश्वास में भी परमात्मा है । अपने आपको रंग देना सत-चित-आनंद में । जब सत्यता का व्यवहार करते हैं तो असत्य दिखता ही नहीं । सब ओर सत ही सत् होगा । तो किसका शोषण करेंगे ? किसके साथ दुर्व्यवहार करेंगे ? किसको गाली देंगे ? किसको बुरा कहेंगे ? किसके साथ अहंकार करेंगे ? आत्मा ही सत् है, परमात्मा ही सत्य है ।

'सत्' हमारा लक्ष्य है, ध्येय है । उसकी प्राप्ति के लिए संतोष को अपनाना पड़ेगा । भीतर में निर्मल हो, व्यवहार भी निर्मल हो, शरीर निर्मल हो, वाणी निर्मल हो । तब संतोष आता है । जिस अवस्था में प्रभु ने रखा है उसमें खुश रहे । भक्त सदना को कसाई बनाया है, उसमें भी वे खुश हैं । अर्जुन को क्षत्रिय बनाया है लड़ने के लिए, उसमें भी उसको उपदेश दिया है कि युद्ध में अपना कर्तव्य करते हुए संतोष को अपनाओ । जिस हाल में प्रभु रखते है उसमें खुश रहना चाहिए । अतृप्त मन साधना के लिए उपयोगी नहीं है । हमें भी चाहिए कि परिवार

में संतोष का जीवन, तृप्ति का जीवन व्यतीत करें । बहिनों को उचित है कि यदि पति की आय अधिक नहीं है तो उसे आय में उन्हें गुजारा करने की कोशिश करनी चाहिए । अपनी मांगों, (इच्छाओं) को कम कर देना चाहिए । कल रात को भी मैंने कहा था कि बहनों को सहयोग देना चाहिए । यदि ऐसा नहीं होता तो परिवार में अशांति रहती है । सत्संगियों में और अन्य भाइयों के घरों में भी बदकिस्मती से अशांति रहती है, क्योंकि पति पत्नी में, परिवार के सदस्यों में, आपस में, सहयोग नहीं है । असहयोग का मुख्य कारण आर्थिक कठिनाई है । यदि स्त्री सहयोग नहीं देती है तो घर नरक बन जाता है । उसके लिए अपनी इच्छाओं को कम करना चाहिए । कम से कम व्यय करें और जितनी आय पति की हो उसी में गुजारा करने की कोशिश करें । यदि पति मजबूर होकर कर्ज लेता है तो उसका दुःख किसको उठाना पड़ेगा । गुरुदेव (महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) कहा करते थे कि घर के खर्चे के लिए कर्जा नहीं लेना चाहिए । यदि कोई मजबूरी आ जाए, जैसे बीमारी आदि तो बात दूसरी है । जहां तक हो सके कर्जे से बचना चाहिए । एक बार यदि कोई व्यक्ति कर्ज में दब जाए तो उससे छुटकारा कठिन होता है । घर की सब बुराइयां इसी के कारण होती है । आजकल महंगाई बहुत है बहनें भी ठीक कहती है परंतु तब भी उनको सहयोग देना चाहिए । जहां तक हो सके अपनी आय में ही गुजारा करना चाहिए, ऐसा करने से घर में शांति रहती है ।

परंतु प्रकृति का कुछ नियम ऐसा है कि संतों के घरों में वातावरण ही कुछ उत्तेजना का होता है । संत तुकाराम जी लिखते हैं कि हे प्रभु यदि मेरी धर्म पत्नी मेरे साथ सहयोग करती तो मैं आपके दर्शनों का लाभ नहीं कर सकता था । संत जी पहले अमीर थे, फिर दुर्भाग्य वश सब धन जाता रहा । उनकी पत्नी बड़ी कठोर थी । एक बार की बात है कि ये गन्ने का गट्ठर सिर पर उठाए हुए आ रहे थे । शरारती बच्चों ने एक एक करके सारे गन्ने ले लिए केवल एक गन्ना रह गया, जिसे लेकर ये अपने घर आए । पत्नी को पेश किया । पत्नी ने उसे गन्ने से उनकी पिटाई की । गन्ने के दो टुकड़े हो गए । तो वह कहते हैं कि हे प्रभु ! तुम्हारी कितनी कृपा है कि एक ही गन्ना है जिससे मेरी इतनी पिटाई हुई । यदि सारी गठरी ले आता तो न जाने कितनी पिटाई होती । ये हंसने की बात नहीं है, हम सब के घर में ऐसी बात होती है परन्तु अंतर क्या है ? हम अपनी पिटाई के बदले डबल पिटाई करते हैं ? सहनशीलता नहीं है । सत्संगी होकर सहनशीलता न हो, यह दुर्भाग्य की बात है । क्रोध आता है तो हम गालियां देते हैं तो हम नाम के सत्संगी है । परलोक को हम नर्क में

परिवर्तित कर देते हैं । वो महान संत कहता है कि हे प्रभु ! सारी गठरी ले आता तो मेरी क्या हालत होती ?" तुम्हारी कितनी दया है कि एक ही गन्ना रह गया ।

तो राम नाम लेने का मतलब केवल राम राम कहने का नहीं है । राम नाम लेने का मतलब यह है कि राम के गुणों को अपनाना है । ईश्वर के गुणों को स्मरण करते हुए उन गुणों को भीतर में धारण करना है और अब अपने जीवन में व्यक्त करना है । यह सब 'नाम' ही कहलाता है । **तो घर में प्रेम का वातावरण होना चाहिए । भले ही टूटी फूटी छोटी सी झोपड़ी हो, यदि उसमें ईश्वर का गुणगान होता है, ईश्वर के गुणों का विस्तार होता है, तो उत्तम है । अगरबत्ती सुगंधी फैलाने के लिए जलाते हैं, परन्तु सुगंधी काहे की होनी चाहिए ? हमारे सद व्यवहार की, हमारे सद्गुणों की, हमारे शुद्ध विचारों की ।** भगवान नारद जी को लेकर जाते हैं अपने भक्तों को दर्शन कराने के लिए । एक घर में गए हैं, वहां कुछ नहीं है ? भगवान कहते हैं–"भोजन करेंगे" । घर में कुछ नहीं है । वह भगवान से कहता है कि आप थोड़ी देर ठहरिये, मैं अभी भोजन लाता हूँ । घर में लकडी जलाने को नहीं है अपने पैर पर पुराने कपड़े बांध कर आग जलाई है, उसे चूल्हे में रख दिया है और उपर से कडाई रख दी है । तेल नहीं है, कड़ाई में पानी डाल दिया है । उसी दिन भीख मांग कर थोड़ा सा आटा लाये थे, उसकी पुड़ी बनाने की कोशिश करने लगे । नारद जी भगवान से कहते हैं कि अच्छे आपके प्रेमी भक्त के यहां आये हैं, इतनी देर हो गई, अभी तक भोजन नहीं आया । अब मैं तो भूखा मरा जा रहा हूँ । भगवान कहते हैं कि आओ अंदर चल कर देखें । क्या देखते हैं कि भक्त अपने आप को जला रहा है, पानी से पूरी सेंक रहा है । नारद जी की भूख खत्म हो गई, उनका अहंकार खत्म हो गया । उस महान व्यक्ति की अतिथि सेवा और दीनता को देखकर नाराद जी आश्चर्य चकित हो गए । भगवान के चरण पकड लिए ।

तो ऐसी झोपड़ी में जहां प्रभु का नाम है, जहां प्रभु के गुणों की सुगंधी है, वहाँ सुहाली है, सुन्दर है और दुर्योधन के महलों में, नवाबों और बादशाहों के महलों में भले ही भिन्न भिन्न प्रकार के भोजन हो, वहां तो खून की नदियां बहती हैं । वहाँ शांति नहीं है । इसलिए हम सब भाइयों को विशेषकर कोशिश करनी चाहिए कि अपने आपको बनाए । गरीबी है, अमीरी है, जिस हालत में है उसमें खुश रहना चाहिए, संतोष को अपनाते हुए अपने घर में सुख शांति और आनंद का वातावरण बनाए । वाणी कठोर नहीं होनी चाहिए, कई भाइयों की वाणी में गालियां होती है, उनको उसकी आदत पड़ गई है जिसे छुड़ाने की उन्हें कोशिश करनी

चाहिए । स्त्रियों को हम छोटा समझते हैं यह भी भूल है वे तन मन धन से आपकी सेवा करती हैं । आप तो उनकी पूजा भी करें तो भी उनकी अहसान नहीं उतार सकते । कबीर साहब ने लिखा है और गुरु महाराज भी कहा करते थे कि ईश्वर ने स्त्रियों को सब गुण दिए हैं परंतु थोड़े से अनुशासन की आवश्यकता है । पुरुष को पहले अपने को अनुशासन में लाना चाहिए । भगवान ने आपको पुरुष इसलिए नहीं बनाया है कि आप कठोरता का व्यवहार करें । संतोष होना चाहिए ।

उसके बाद 'विचार' । पहले शुद्ध विचार होने चाहिए । ईश्वर के गुणों में अपने आपको रंग देना चाहिए । फिर अंतिम विचार आएगा कि आखिर इस दुनिया में काहे के लिए आया हूँ । मैं कौन हूँ ? मेरा क्या कर्तव्य है ? मुझे क्या करना है ? विचार के लिए शास्त्रों में लिखा है 'आत्म विचार' । मैं कौन हु ? क्या मैं शरीर हूँ, प्राण हूँ, मन हूँ, बुद्धि हूँ, आनंद हूँ, कौन हूँ ? मैं तो आत्मा हूँ जो शांति का, आनंद का सागर है । यही तो मेरा स्वरूप है इसी में मुझे स्थित होना है । मैं तो भूला हुआ हूँ, भटका हुआ हूँ । वशिष्ठ जी भगवान राम को प्रतीक बनाकर यह उपदेश हमारे सबक के लिए दे रहे हैं । शांति और आनंद को कहां ढूंढ रहे हो ? वह आनंद तो आपके भीतर में हैं । वह आप का स्वरूप है । अपने स्वरूप को पहचानो (Know thyself) ।

जब आत्मिक स्थिति आ जाती है तब 'आत्म शांति' आती है । वह ब्रह्म का रूप हैं वही हमारे जीवन का ध्येय है । संतों ने कहा है कि व्यक्ति को भोजन कैसा करना चाहिए– सत्, संतोष, विचार । सात्विक विचार और प्रभु के प्रेम का । जो इस प्रकार का भोजन करता है उसका उद्धार होता है । **'नाम' का मतलब ही 'प्रेम' है** । ईश्वर से प्रेम तो है ही परंतु ईश्वर का प्रेम तभी सफल होगा, जब ईश्वर के भिन्न भिन्न रूपों से प्रेम करेंगे । संसार के साथ तो हम दुर्व्यवहार करें और सुबह शाम उठकर कोने में आँखें बंद करके बैठ कर पाठ करें और समझे कि हम तो बड़े ही प्रेमी हैं, ये नहीं चलेगा । हमें आदत होती है कि किवाड़ भी खोलते हैं तो झटके के साथ खोलते हैं, संत कहते हैं किवाड़ भी प्रेम से, अदा से खोलो, उस लकडी को भी कष्ट न पहुंचे । हमारे यहाँ की प्रथा है कि चलते में हम देखते हैं कि हमारे पांव के नीचे कीटाणु तो नहीं आते, चलते में वे कहीं कुचल ना जाए । **हृदय में दया, करुणा और अहिंसा होनी चाहिए । ये सब 'नाम' के ही रूप हैं, केवल राम राम करने से काम नहीं बनेगा । जिसका नाम लेते हैं उसके गुणों को अपनाएंगे, यह 'नाम' लेना है** । गुण आने चाहिए । गुरुदेव कहते हैं "गुरु बिनू

भक्ति न होई" । बिना गुणों के आये भक्ति नहीं हो सकती । इस तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए । गुण आते हैं विचार करने से, मना करने से सत्संगमें जाने से, गुरु महाराज के प्रवचनों को पढ़कर उन पर विचार करने से । श्रवण मनन निध्यासन करना वैसे बन जाना, ये भक्ति का रूप है । परिवार में सुख, शांति से रहना चाहिए । इस बात की परवाह न करें कि गरीबी है, या अमीरी है । जैसे प्रभु रखें उसमें संतुष्ट रहना चाहिए । आपको आगे बढ़ने की स्वतंत्रता है, खूब मेहनत करें, जो मेहनत नहीं करते हैं वे प्रमादी है, वे अधिकारी नहीं है । परन्तु यदि मेहनत करने के बाद भी सफलता नहीं मिलती है तो संतुष्ट रहना चाहिए । ये समझना चाहिए कि प्रभु की ऐसी ही इच्छा है । 'जेहि विधि राखे राम, तेहि विधि रहिये' । जिस परिस्थिति में वे रखें, उसी में वे आनन्दित रहें । भीतर में तृप्ति होना चाहिए ।ॐ।

राम संदेश,सितम्बर १९८३

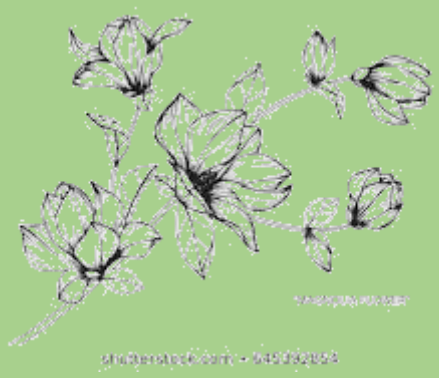

(१०)

आत्मा को स्वतंत्र बनाने की तैयारी कैसे करें

बांदीकुई, दि० १५-२-१९८२

अब मैं कौन उपाय करूं ।
जेहि विधि मन को संसय छूटे, भव निधि पार परौ ।
जन्म पाय कछु भलो न कीन्हो, ताते अधिक डरौ ।
मन बच कर्म हरि गुण नहीं गाये, यह हिय सोच धरौ ॥
गुरु मत सुन कछु ज्ञान न उपज्यो, पसु ज्यों उदर भरौ ।
कह 'नानक' प्रभु विरद पहचानो, तब हौं पतित तरौ ॥

भव के पार उतरना, ईश्वर के दर्शन करना, संस्कार मुक्त होना, मोक्ष को प्राप्त होना, यह सब एक ही बात है । बाइबिल में लिखा है कि सुई की आंख में से एक ऊँट निकल सकता है परन्तु अमीर आदमी उसमें होकर नहीं निकल सकता । अर्थात वही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त होगा जो हल्का फुल्का होकर जाएगा यानि कोई संस्कार अपने साथ लेकर नहीं जाएगा । यहां अमीर आदमी से आशय है कि जो व्यक्ति संस्कारों का बोझ उठाए हुए है । मोक्ष के प्रति महात्मा बुद्ध का कहना है कि मोक्ष तब मिलती है जब जिज्ञासु के भीतर एक भी संस्कार नहीं रहता, एक भी इच्छा शेष नहीं रहती । जैनी भी यही कहते हैं कि जब तक भीतर में निर्मलता नहीं आएगी, सब प्रकार के संस्कार, आसक्ति, पाप धुल नहीं जाएंगे, मन निर्मल नहीं होगा तब तक जन्म-मरण से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी, आवागमन के चक्र से नहीं छूटेंगे । एक दार्शनिक का कहना है कि जब कोई पर्वतारोही ऊपर चढ़ता है तो धीरे-धीरे सामान कम करता चला जाता है । अंत में वह केवल उतना सामान साथ लेता है जितने की उसे आवश्यकता है । यदि बोझ अधिक हो तो वह पहाड़ पर चढ नहीं सकता है । इसका मतलब यह है कि हमारा मन जहां फंसा हुआ है वहां से उसे हटाना चाहिए । उस दार्शनिक के लेख का शीर्षक था " Travel light " यानी हल्के सामान के साथ यात्रा करो ।

इसी प्रकार की एक बड़ी सुन्दर कथा एक बहिन ने सुनाई है कि एक व्यक्ति को ईश्वर प्राप्ति की चाह थी । उसे एक संन्यासी जी मिले । उनसे उसने विनती रखी की कि वे परमात्मा के दर्शन करा दें । उसकी जिज्ञासा सच्ची देखकर संन्यासी जी ने कहा कि मेरे साथ

चलो, सामने पहाड़ी पर चढ़ना होगा उसने कहा–"ठीक है" । सन्यासी ने कहा- "पांच पत्थर उठा कर सर पर रख लीजिये और मेरे साथ चलिए" । उस व्यक्ति के मन में जिज्ञासा तो सच्ची थी हीं, उत्साह में उसने पांच पत्थर उठा कर सर पर रख लिए । कुछ कदम चलने के बाद उसने संन्यासी जी से कहा कि महाराज इतना बोझ उठाकर तो मुझसे चला नहीं जाता । सन्यासी ने कहा–"एक पत्थर फेंक दो" । एक पत्थर फेंक कर भी कुछ दूर गया होगा कि उससे चला नहीं गया । उसने फिर संन्यासी से निवेदन किया तो उन्होंने कहा कि दूसरा पत्थर फेंक दो । बोझ उठाकर भला कौन चढ़ाई कर सकता है । तीसरा फिर चौथा पत्थर नीचे फेंकने के बाद भी जब उस व्यक्ति को पहाडी पर चढ़ने में कठिनाई हुई तो संन्यासी ने कहा कि पांचवां पत्थर भी फेंक दो । अब उस व्यक्ति ने कहा कि मैं चढ़ाई कर सकता हूँ । संन्यासी जी ने कहा कि क्या तुम इस बात का भाव समझे कि पत्थर क्या है और उन्हें फेंक कर चढ़ाई करने में सुगमता क्यों है ? परमात्मा के पास जाने से पहले काम क्रोध लोभ मोह और अहंकार का जो बोझ हम अपने सिर के ऊपर लाद रखा है उसका त्याग करना होगा ।

तो हमें चाहिए कि अपने दैनिक जीवन का स्व निरीक्षण करके देखें कि क्या यह बोझ सरलता से उतर जाता है ? किसी को सिगरेट पीने की आदत है तो वो उससे छूटती नहीं, तंबाकू खाने की आदत है तो वह नहीं छूटती । खाना खाते समय यदि स्वादिष्ट भोजन हो तो यह जानते हुए कि यदि अधिक खा जाएंगे तो पेट खराब हो जाएगा उसे खाए जा रहे हैं, क्योंकि जिह्वा का रस आता है, तो सब भूल जाते हैं । ये छोटे बच्चों की बात नहीं कहता मैं, बड़ों की बात कर रहा हूँ जिनका कि शरीर दो चार दस साल का मेहमान है । तो यह बोझ अपने सिर पर से कैसे उतारे ? उसके लिए कई साधनाएं हैं । जो दार्शनिक ने कहा या सन्यासी ने कहा ये बुद्धि का मार्ग है, ज्ञान साधना है, परन्तु केवल कहने से ही तो नहीं होगा । गुरुदेव (महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) का आदेश है कि पहले धर्म का पालन करें यानि 'यम' और 'नियम' का पालन करें । वे हमारी शोचनीय अवस्था को देखकर कहा करते थे और उनका मेरे प्रति यह आदेश था कि सत्संगी भाइयों से 'यम' और 'नियम' का पालन सख्ती से कराउं । परंतु कौन करता है ? लापरवाही है । बहुत कठिन है । इसका मतलब यह नहीं कि यह रास्ता गलत है । बुद्ध वचन में भी पांच बातें हैं उनको क्षीर साधना कहते हैं । वह हमारे पांच नियमों की तरह ही हैं । इसके लिए साधक को बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस साल की साधना करन पड़ती थी । इसका मतलब यह है कि शरीर को स्वच्छ और स्वस्थ रखा जाए, मनो विग्रह किया जाए, बुद्धि को शुद्ध किया जाए, यानि शास्त्रों के अनुसार बनाया जाए आदि । इस प्रकार भीतर

में करने से शांति उत्पन्न होती है । क्षीर का मतलब है, 'शीतलता' । वो दीक्षा नहीं देते जब तक साधक तैयार नहीं हो जाता यानी उसके भीतर में शांति उत्पन्न नहीं हो जाती । जो व्यक्ति धर्म का पालन नहीं करता, चाहे वह किसी संप्रदाय का हो, इसको मुसलमान लोग शरियत कहते हैं, हम धर्म कहते हैं, उसके मन में शांति उत्पन्न नहीं हो सकती । इसका पालन करना अति आवश्यक है । बड़े-बड़े ज्ञानी, बड़े-बड़े भक्त, जब परीक्षा का समय आता है तो असफल हो जाते हैं ।

महाराजा दशरथ के संतान नहीं होती थी । बड़े दुखी रहते थे । एक दिन किसी ने परामर्श दिया कि यदि श्रृंगी ऋषि आकर वरदान दें, तो संतान हो सकती है । परन्तु श्रृंगी ऋषि के पास जाने से सब लोग डरते थे । वशिष्ठ मुनि भी जाने से संकोच करने लगे, क्योंकि श्रृंगी ऋषि महान ऋषि थे । जबकि कोई उनके पास जाने को तैयार नहीं हुआ, तो एक वैश्या थी, वह कहने लगी कि मैं जाती हूँ । वह ऋषि के आश्रम के निकट गई, उनका आश्रम देखा, एक दो दिन यह भी देखा कि ऋषि की दिनचर्या क्या है ? वे क्या करते हैं ? वे दिन में एक बार आते और एक वृक्ष का थोडा सा तना एक बार चाट लेते । ये उनका एक दिन का भोजन था । वैश्या बड़ी चतुर थी । उसने सोचा कि बस अब तो मुझे गुर मिल गया । अब देखिए कि हमारे दबे हुए संस्कार किस प्रकार जागृत होते हैं । यद्यपि हम सोचते हैं कि हम तो बड़े पवित्र हो गए । ऐसा नहीं है । दूसरे दिन ऋषि पेड का तना चाटने आए तब भी उसने छिप कर देख लिया । अगले दिन उसने उनके आने से पहले ही उस वृक्ष के तने पर थोड़ा सा अन्न लगा दिया । अन्न में एक अवगुण हैं कि ये कामवृत्ति को उत्तेजित करता है । इसलिए लोग गेहूं कम खाते हैं, चावल खाते हैं । चावल कुछ सात्विक होता है । कबीर दास जी जौ की रोटी खाते थे । गुरु अमरदास जी भी जौ की खिचड़ी खाते थे । जितने भक्त लोग होते हैं उनका भोजन सादा, सात्विक और मात्रा में बहुत कम होता है । तो अन्न को जब ऋषि ने चाटा तो उनके मन में चंचलता पैदा हुई । महान तपस्वी थे, अभ्यासी थे । अपने मन को वश में लाए । दिन गुजर गया । प्रतिदिन वो वैश्या ऐसी करती रही । फिर उसने अन्न के बजाय पेड़ के तने पर कुछ मधु लगा दिया । जब ऋषि ने उसे चाटा तो कुछ रस आया । दोबारा चाटा तो और रस आया । इस तरह रोज चाटते-चाटते मन तो चंचल होना ही था । जब इंद्रियों का रस आता है तो आत्मा का आनंद लोप होने लग जाता है । जब वैश्या ने योग्य अवसर देखा तो वह सामने आ गई । ऋषि के मन में चंचलता तो उत्पन्न ही हो चुकी थी, कामनाएं उत्तेजित हो चुकी थी, वैश्या को देखते ही वे अपना संतुलन खो बैठे । खैर, दोनों साथ साथ रहने लगे । दोनों दो बच्चे

भी हो गए । फिर वैश्या को अपनी बात याद आई । उसने ऋषि से कहा, मैं तो आपको साथ ले जाने के लिए आई थी । राजा दशरथ के कोई संतान नहीं है । आपको उन्हें वरदान देना है । स्त्रियां कुछ चतुर होती हैं । ऋषि ने कहा मेरे तो दो बच्चे हो गए हैं, मैं किस मुंह से जाऊँ ? वैश्या ने कहा कि नहीं, नहीं, आप समर्थ हैं, आपके पास सब शक्ति है, आप चलिए । ऋषि ने बच्चों को कंधे पर बैठाया और राजा दशरथ के दरबार में पहुंचे । वहां आशीर्वाद दिया और राजा दशरथ को चार सुपुत्र हुए ।

कहने का मतलब यह है कि संस्कार तो नहीं खत्म हुए । कितने ज्ञानी ऋषि थे । इस परमार्थ के रास्ते पर कभी अपने आप पर प्रतीत या विश्वास नहीं करना चाहिए । प्रकृति (माया) भी इसीलिए बार बार परीक्षा लेती है । गुरु भी परीक्षा लेता है । लोग बाग डर जाते हैं कहते है कि जब से सत्संग में आए हैं, घाटा ही घाटा पड़ रहा है । घर में लड़ाई होती है, क्रोध भी अधिक आता है, पैसा भी हाथ में नहीं रहता । अब विश्वास हो जाता है । मन कुंठित हो जाता है, संशय उत्पन्न होने लगता है । तकलीफों से डरना नहीं चाहिए । इस रास्ते पर वो ही चलते हैं जो शूरवीर होते हैं । क्षत्री होते हैं । क्षत्री का मतलब यह नहीं कि कोई जाति विशेष हो । क्षत्री का मतलब यहाँ यह है कि जिसके भीतर में उत्साह है, जो अपनी इंद्रियों, शरीर, मन और बुद्धि को वश में कर सकता है, वह क्षत्रिय हैं । अपने अवगुणों को ज्ञान साधना द्वारा धीरे-धीरे छोड़ने का प्रयास करना चाहिए । विवेक बुद्धि से विचार करना चाहिए कि गुणों के संबंध से जो लीला भगवान की हो रही है, उससे मेरा कोई संबंध नहीं है, मैं तो शुद्ध निर्लेप आत्मा हूँ । आत्मा का कोई दोष नहीं होता । साधना गलत नहीं है परंतु देखा गया है कि अनुभव में व्यक्ति के संस्कार रह जाते हैं । मेरे एक मित्र थे, बहुत विद्वान थे और उन्होंने संतों की बड़ी सेवा की, बड़ी साधना की । बीमार भी रहते थे, जीवनी उनकी इतनी सुंदर थी कि उनके दर्शन करके तृप्त होती थी । लेकिन मोक्ष क्या है ? मोक्ष तो मन की होती है आत्मा की क्या मोक्ष है ? वह तो पहले ही स्वतंत्र हैं । मोक्ष अभी है- Now and here यह मन का विचार है कि परतंत्र है, पराधीन है । ज्ञान के विचार से देखें तो कहेंगे कि हम तो आत्मा है, निर्लेप है, स्वतंत्र हैं । ये जो संस्कार हमारे भीतर में है ये अपना काम करें । हमारी आत्मा से, इनसे क्या मतलब । परन्तु ये कहने भर की बातें हैं । दुर्भाग्य बस मेरे उन मित्र का एक लड़का जो मुंबई में रहता था उसकी मृत्यु हो गई । शोक का ऐसा धक्का उन्हें लगा कि उन्होंने कुछ ही दिनों में शरीर छोड दिया । बड़ा उत्साह देते थे । बड़ा ज्ञान प्रदान करते थे । परन्तु जब हृदय पर चोट लगी तो वह ज्ञान क्या सहायक हुआ ?

दूसरा रास्ता है भक्ति का । इसके लिए महापुरुषों ने कहा है जैसा कि आप भजन में सुन रहे थे, कि मन व्याकुल रहता है, कि धर्म की कमाई नहीं की, गुरु से उपदेश लिया तो वह जीवन में उतरा नहीं । यह चिंता रहती है कि भवसागर से कैसे पार जाए ? स्वयं हीं गुरुदेव (गुरु नानक) उत्तर देते हैं कि हमारा बल किसी काम का नहीं है , केवल एक उसी परमात्मा का आश्रय है–"हारे को बल राम" । जो व्यक्ति हार मान लेता है कि मेरा तो कुछ भी बल नहीं है, समर्पण कर देता है–"मैं कुछ नहीं हूँ"-- उसी को भगवान मिलते हैं । गुरुदेव कह रहे हैं कि मेरी कोई शक्ति नहीं, मन, वचन, कर्म से कोई शुभ कर्म किये नहीं है, न कोई ज्ञान साधना है, अब इस स्थिति में मैं क्या करूँ । किश्ती डूब रही है, एक ही विश्वास है कि प्रभु ! आपका विरद है, आप पतित पावन है कि आप की शरण में जो आता है, आप उसको अपने चरणों में जगह दे देते हैं । उसी विरद को सामने रखते हुए कुछ आशा बनती है कि हम भी आपकी कृपा से जन्म-मरण के चक्र से छूट कर, मोक्ष को या स्वतंत्रता को या प्रभु दर्शन को प्राप्त कर सकेंगे । "कहूँ नानक प्रभु विरद पहचानों" -- बड़ी अजीजी से, बड़ी दीनता से गुरुदेव कहते हैं– "तब हौं पतित तरौ" तब हम पतितो का उद्धार होगा । हमारे कर्मों के फलस्वरूप यह शरीर मिलता है । हो सकता है कि शुभ कर्मों के फल स्वरूप परलोक तक पहुंच जाए, परन्तु वहां से भी हमें लौटना पड़ेगा । यह मोक्ष नहीं है । देवी देवता गण भी ईश्वर से प्राथना करते कि हे प्रभु ! मनुष्य चोला प्रदान करें, जिससे आपकी सेवा करें, भक्ति करें और मोक्ष को प्राप्त करें । तो कर्मों द्वारा परलोक तक हम पहुँच सकते है परन्तु मोक्ष जब तक प्रभु कृपा नहीं होती है गुरु की कृपा दृष्टि नहीं होती है, तब तक नहीं मिलती । गीता में इस कृपा को 'प्रसाद' शब्द कहा है । संत जन प्रभु की स्तुति करते हुए कहते हैं । "जेहिं विधि राखे राम, तेहिं विधि रहिये" जिस व्यक्ति के अंदर ईश्वर की गति में अपनी गति को मिलाने और उसकी इच्छा में चलने का अभाव होता है, उसमें अहंकार पैदा हो जाता है, ईश्वर से अलहदगी हो जाती है । माया की दीवार बन जाती है । उसका हुक्म क्या है, उसकी इच्छा क्या है, वह इससे हमसे क्या कराना चाहता है, अभ्यास से यह जानने की कोशिश करनी चाहिए । तो गुरुदेव स्वयं प्रश्न करते हैं कि माया की दीवार कैसे टूटे ? स्वयं हीं उत्तर देते हैं कि "हुकुम रजाई चालना" यानी ईश्वर का जो हक है, इच्छा है, उसके अनुसार चलें । "जेहिं विधि राखे राम, तेहिं विधि रहिये" ।

(११)

पवित्रता निर्मलता सरलता के बिना आदमी को उन्नति नहीं होती है

मथुरा, राम नवमी दि० २-४-१९८२ प्रात:

प्रवचन से पूर्व कबीर साहब की यह वाणी पढ़ी गई-----

गावो री दी दुल्हिनी मंगल चारा, मेर गृह आये राजाराम भरतारा ।
तन रहनी मन पुनरव कारिहों पांच तत्व बाराती ।
राम राय सो भाँवर लाइहों आतम ते रंग राती ।।

गावो री .....

नाभि कंवल में वेदी रचि ले, ब्रह्म ज्ञान उचारा ।
राम राय सो दूल्हो पायो, अति बडभाग हमारा ।।

गावो री .....

सुर न्र मुनि जन कौतुक आये कोटि तैंतीस उजान ।
कहे कबीर मोहे ब्याह चले है पुरुष एक भगवाना ।।

कबीर साहब ने अपनी इस वाणी में भगवान राम का विवाह सीता के साथ होना बताया है । इस बारात में कौन कौन सम्मिलित हैं ? सब जीव जंतु हैं, पंचतत्व है और कामनाएं, इच्छाएँ सब बारात में हैं । बेदी कहाँ बनाई गई है ? नाभि चक्र पर । यह भगवान विष्णु का स्थान है । सारा साधन उन्होंने बतलाया है । यह पंच तत्व जो है, सोए हुए हैं । मूलाधार चक्र में जो भगवान श्री गणेश का स्थान है । हम जो भी शुभ काम करते हैं । पहले भगवान श्री गणेश की पूजा करते हैं । गणेश भगवान की पूजा का मतलब ये है कि शक्ति को साथ ले, (आत्मिक शक्ति, परमात्मा की शक्ति) तब उन्हें प्राप्त करें । गुरु की सहायता लेकर इस आध्यात्मिक पथ पर चलने का साहस करें । पुरातनकाल में पहले साधना मूलाधार चक्र से शुरू की जाती थी । संतों ने विशेष कर करीब साहब ने जैसा कि आपकी इस वाणी में स्पष्ट है, वेदी बनाई है भगवान राम और सीता के विवाह की नाभि चक्र पर, भगवान विष्णु के चरणों में । यहाँ से भगवान राम, सीता को लेकर या भगवान शिव, शक्ति (पार्वती जी) को लेकर या भगवान कृष्ण राधा को लेकर अपने धाम को (जिसे सचखंड भी कहते हैं) सत् लोक भी कहते हैं, (जहां लोग सर पर चोटी रखते हैं, वह ब्रह्मरन्ध्र का स्थान है) यहां आप पधारे हैं और स्थान की महिमा

गाई है । सीताजी के मुखारविंद से यह वाणी कही गई है कि भगवान राम की प्राप्ति के बाद कितना मुझे आनंद मिला है । सीता जी अपनी सहेलियों से कहती है कि भगवान के गुणगान करो और इस पद पर चलकर राम सरीखे पति को अपना कर आप भी राममय हो जाओ । गुरु नानक साहब ने भी लिखा है "सितो सीता महिमा मोय"---यानि सीता, ये सूरत जो है वह सत्य के साथ समा जाती है । वह सचखंड बन जाता है ।

मनुष्य को परमात्मा ने, अपने अनुरूप बनाया है । 'पिंड सो ब्रह्मांडे' जैसी शरीर में हमारी अवस्था होती है । शरीर में जिस स्थान पर हमारी सूरत की बैठक होती है उस स्थान का आकर्षण महामंदिर में हमारा स्थान हो जाता है । जिन अभ्यासियों की सूरत गुरु या परमपिता परमात्मा में या भगवान राम के चरणों में लीन हो जाती है, वही लोप हो जाते है तो उनका संबंध परमात्मा के अस्तित्व के साथ हो जाता है । जिनकी सूरत शरीर पर हैं उनका संबंध तत्वों के साथ रहता है । दुनियादारी में रहता है । जिनकी सूरत मन पर है वे चंचलता में रहते हैं मन के स्थान पर रहते हैं । वायुमंडल में भी जहाँ मन का स्थान है यानि कभी उतार है, कभी चढ़ाव है, कभी तो आप परलोक के विचार उठाते हैं, कभी गिर जाते हैं । कभी बड़े अच्छे विचार आते हैं तो उस वक्त वक्त संतों का ध्यान आता है, परमात्मा का ध्यान आता हैं और उसके निकट हो जाते हैं । जब नीचे गिर जाते हैं तो तो राक्षसों जैसी प्रवृत्तियां हो जाती है । यही रोज होता रहता है ।

तो साधना यही है कि सीता बन कर अपनी सूरत, जो नीचे के स्थानों में फंसी हुई है उसे वहां से निकाल कर ऊपर के स्थानों में ले जाना है । आप देख लीजिये कि जिस वक्त मन चंचल अवस्था में होता है या बुरे विचार सोचता है तो उसका स्थान नीचे होता है । एक बड़ी कोशिश करनी पड़ती है अपनी सूरत को उठाकर आज्ञा चक्र पर या ऊपर के चक्रों में लाने के लिए । जब विचार सात्विक होते हैं या मन में स्थिरता आ जाती है तो कई सत्संगी भाई कहते हैं कि हमारी सूरत का पता नहीं लगता । आपने तो कहा था कि ध्यान आज्ञा चक्र पर करें, हमारा ध्यान तो ऊपर चला जाता है । यह तो अच्छी हालत है कोशिश करनी चाहिए कि वहां हम अपने आप को स्थिर कर सके । बच्चे अभी जल्दी नहीं करें । उनको बिना मेरे पूछे आज्ञा चक्र से ऊपर जाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए और दूसरे वे अभ्यासी भी बीच बीच में अपनी हालत बताते रहे । क्योंकि एकदम कोशिश करेंगे तो कभी कभी हानि भी हो जाती है । इस पद में कबीर साहब ने लक्ष्य बता दिया है कि अपनी सूरत को निर्मल करते

हुए अपनी जीवात्मा को ऊपर धीरे धीरे ले जाकर भगवान राम के चरणों में डालिए । वहीं राम भगवान कृष्ण हुए, वहीं भगवान शिव हुए । राम परमात्मा है । भिन्न भिन्न नामों से परमात्मा को पुकारते हैं । आजकल नवरात्रों में पूजा पाठ करते हैं इसलिए यह दिन भगवान राम की स्मृति में बड़े महत्व का दिन है ।

परन्तु वास्तविकता समझनी चाहिए । शक्ति की भी पूजा आजकल होती है । भीतर में जो शक्ति सोई हुई हैं उसको जागृत करना है । बच्चों की पूजा जो आजकल करते हैं वो पवित्रता निर्मलता और सरलता की पूजा करते हैं । जब तक यह तीन गुण हमारे में नहीं आता है (पवित्रता निर्मलता और सरलता) तब तक उन्नति नहीं होती । बच्चों में सरलता होती है । छोटे छोटे बालकों के चरण धोते हैं, उनकी पूजा करते हैं उन की सेवा करते हैं, किस लिए ? कि इन गुणों को धारण करना है । जब तक सरलता नहीं आएगी हम कितने ही विद्वान बन जाये हमारी आत्मा परमात्मा में लय नहीं हो सकेगी । जिनको हम योग कहते हैं । योग का मतलब ही है जोड़ना या विवाहित होना या लय होना । उसी में समा जाना । वह नहीं हो सकेगा जब तक उपरोक्त तीनों गुण धारण नहीं करेंगे । आप पूजा जितनी मर्जी हो कर ले, पुस्तक पढ़ लें, बडा आनंद आता है पुस्तक पढ़ने में, परन्तु जो गुण कन्या में होना चाहिए, जो सीता जी में थे, वो पुरुष को भी अपनाने हैं । गुरु महाराज का कहना था कि प्रकृति के दो रूप हैं शिव और शक्ति, पुरुष और स्त्री । स्त्री के जो गुण हैं जब तक पुरुष उनको नहीं अपनाता है, वह कितना भी साधना करें वह (अध्यात्म के) अंतिम चरण पर नहीं पहुंच सकेगा । और स्त्री भी जब तक पुरुष की दृढ़ता को नहीं पकड़ेगी, उसमें स्थिरता नहीं आएगी । महान गुण है स्त्रियों में मगर दृढ़ता नहीं है । गुरु महाराज ने लिखा है और “गुरु शिष्य संवाद” पुस्तक में पहले ही अध्याय में इसका वर्णन है । तो स्त्रियों के भी गुणों को अपनाना है । सीताजी के गुणों को भी अपनाना होगा । लक्ष्मी जी के गुणों को भी अपनाना होगा । भगवती जी के गुणों को भी अपनाना होगा । तो भगवान राम की प्राप्ति कैसे होगी ? जब तक इन दोनों का संयम नहीं होगा तब तक हमारी प्रगति नहीं हो सकती ।

कोशिश करें । गुरु महाराज के प्रवचन बार बार पढ़ें और उनका जो अनुभव उसमें लिखा है उसे समझना चाहिए । विचार करना चाहिए और विचार करके देखना चाहिए कि हमारे भीतर गलती क्या है । भगवान राम जैसी स्थिरता आनी चाहिए । भगवान राम जैसे गुण आने चाहिए । दोनों गुणों को लेकर चलना चाहिए । साधक का रूप एक स्त्री जैसा है । स्त्रियों के

गुण को लेकर भगवान राम की वो पूजा करता है--- सीधे शब्दों में । तो इन नवरात्रों में खासकर अष्टमी व नवमी को स्त्रियां छोटे छोटे बच्चों की पूजा करते हैं तो उसकी सरलता की पूजा करती हैं । बड़ी कोशिश करते हैं फिर भी हमारे अंदर बच्चे वाली सरलता नहीं आती । नवजात शिशु को देखिये, माँ की गोद को भूल जाता है, कुछ बड़ा होता है तो माँ की गोद से मोह हो जाता है । जो उसे उठाता है उसी को मुस्कान देता है । तो उस की जैसी सरलता चाहिए अर्थात कोई कितना भी शत्रु हो उसके साथ हम सालता का व्यवहार करें । शिशु रूप हमारी आत्मा, कोई शत्रु नहीं देखती, कोई मित्र नहीं देखती, सबकी गोद में जाकर मुस्कान देती है । इसलिए बालकों की, छोटी कन्याओं की बड़ी स्तुति की है, इसलिए कि उनमें सरलता होती हैं । जब तक उनके संस्कार उभरते नहीं है तब तक उनके भीतर में पवित्रता, सरलता, कोमलता होती है । जैसे जैसे बालक बड़ा होता है, उसके दबे हुए संस्कार उभरते हैं, उसमें भी इर्ष्या आ जाती है । यहाँ तक कि जब वह बड़ा हो जाता है उसकी शादी होती है तो जिस माँ ने उसको पाला पोसा है उसके साथ वह इर्ष्या करने लगता है । माँ भी बच्चे के साथ इर्ष्या करने लग जाती है । यह स्वाभाविक है किसी का दोष नहीं है । तो पूजा सरलता की है । जितना आदमी बडा होता जाता है और उसमें राग द्वेष और अधिक इसकी विकसित होते जाते हैं । साधना यही है कि इन राग द्वेष दोनों से अलग होकर सीता जी जैसे निर्मल पवित्र होकर हम भगवान राम की पूजा करें । वहां परलोक में जाकर, प्रभु के चरणों में जाकर, निर्णय किस बात का होगा वहां तो हमारी सरलता का निर्णय होगा । यदि सब कुछ करके भी हमारे भीतर में शत्रुता है छोटे बड़े का प्रश्न है, स्त्री पुरुष का ज्ञान है, बुराई भलाई का ज्ञान है, तो अभी तो रास्ता दूर है । भगवान राम ने हमें शुद्ध आचरण दिया, मर्यादा प्रदान की, एवं जिस पवित्र धरती पर हम इस समय बैठे हैं (कृष्ण जन्म-भूमि, मथुरा) उसके अधिष्ठाता भगवान कृष्ण ने हमें मार्गदर्शन किया कि किस प्रकार हम राग द्वेष और मोह से मुक्त हो । गीता का उपदेश सुनकर, भगवान राम की मर्यादा को पकड़कर भी यदि राग खत्म नहीं होता तो यह हमारा दुर्भाग्य है । अर्जुन मोह रूपी दलदल में फंसा है । एक अर्जुन की हालत नहीं है यह हमारी रोज की अवस्था है---हर वक्त प्रतिक्षण हम मोह में फंसे रहते हैं--- यह बड़ा ज़ालिम है, घोर शत्रु है । अर्जुन विद्वान था, शास्त्रज्ञ था, भगवान कृष्ण का प्रिय था, संबंधी था, मित्र था तब भी उसकी हालत देखिये । कितनी सोचनीय अवस्था है, मोह में फंसा हुआ है । भगवान जैसे गुरु मिले हैं, तब भी वह भगवान से कहता है--- यह सब कुछ आप संभालिए, मुझे कुछ नहीं चाहिए । मुझे ना राज चाहिए न कुछ वैभव चाहिए । मैं तो सब कुछ त्याग कर संन्यासी बनता हूँ ।

आप जिसको चाहे राज दे दीजिये, दुर्योधन को सब कुछ । यह रोज होता है हमारे साथ । जो लोग संन्यासियों साथ रहते हैं भले ही ऐसे न हो । व्यवहार में आप जिससे प्रेम करते हैं वो आप से घृणा करते हैं, आपकी बुराई करते हैं, उस वक्त मन की क्या हालत होती है । संसार में अब प्रतिक्षण हम असमंजस में पड़ते हैं कि फलाँ दफ्तर में गए, वहां बिना पैसे दिए काम नहीं होता है । इधर सत्संग में भी जाते हैं । अब क्या करें ? रोज यह घटनाएं हमारे सामने आती है कि क्या करना चाहिए । धर्म और अधर्म रोज हमारे सामने आते हैं, जिसको गीता का अर्थ अभी तक समझ में नहीं आया उसकी हालत बड़ी सोचनीय है । लोग बाग पागल हो जाते हैं, आत्महत्या कर लेते हैं । अभी तीन चार दिन हुए आपने अखबार में पढ़ा होगा कि एक आई०ए०एस० अधिकारी बड़ा विद्वान, जिससे बड़ी आशा थी, उसने इसलिए आत्महत्या कर ली कि वह जैसा आदर्शमय जीवन चाहता था वह उसको सरकारी दफ्तरों में दिखाई नहीं दिया । किसी अच्छे व्यक्ति का संग उसको मिल गया होगा, कुछ अच्छे संस्कार होंगे परन्तु उसने वास्तविकता में देखा कि मैं कहां फंसा हूँ ? इससे तो मरना हीं अच्छा है । यह रोज होता है हम लोगों के साथ । ऐसी स्थिति में जो व्यक्ति रहते हैं उनके लिए भगवान कृष्ण अर्जुन को प्रतीक बनाकर सारे विश्व को उपदेश दिया है ।

पहला जो उपदेश दिया है कि 'अज्ञानता' दूर करो । जो ज्ञानी है वह क्या समझ सकता है कि मोह क्या है ? और शुद्ध अनुराग क्या है ? द्वेष क्या है ? इसमें दुःख देता है हमारा अहंकार । वही सबका मल है, वही हमारे अंदर बड़ा राक्षस है । यही कभी गुरु बन बैठता है, कभी ईश्वर बन बैठता है, कभी किसी बुरे काम के लिए कहता है कि इसमें बुराई क्या है ? फिर जब वह व्यवहार में आता है यानी व्यावहारिक जीवन में जब वह प्रवेश कर जाता है तो मोह आ जाता है । 'यह मेरा लड़का है, यह मेरा शत्रु है' आदि । अर्जुन कहता है कि यह कौरव मेरे भाई और मेरे गुरुजन खड़े हैं इन से कैसे लड़ूं, इनका वध कैसे करू ? ऐसी परिस्थिति में हमें शरण लेनी होगी भगवान राम की, भगवान कृष्ण की । यह हमारी भारतीय सभ्यता के स्तम्भ रामायण और गीता को निकाल दें तो भारत रहता है क्या है ? इसके बिना भारत माता सूनी हो जायेगी ।

जब अज्ञान से कुछ मुक्त हुए, अहंकार से मुक्त हुए, तब भगवान अर्जुन को आत्मा पर ले आये । बड़ी कठिनाई आई है, अठारह अध्याय सुनाये है अर्जुन को, प्रवचन दिए हैं और कितने ही प्रश्न अर्जुन ने किये परंतु भगवान कितने दयालु थे, कितने कृपालु थे कि

उन्होने तनिक भी बुरा नहीं माना । कितना अर्जुन भाग्यशाली था कि भगवान ने उसे धीरे धीरे लाकर आत्म स्थिति भी अवस्था पर खड़ा किया । विराट रूप के दर्शन दिए । समझाया कि कौन किसका है । जिनको तुम पिता मान रहे हो, कभी वह तुम्हारी संतान थे । अब भी उसे समझ नहीं आई हैं । आत्मस्थिति क्या है ? वहां मेरा-तेरा पन है हीं नहीं है, कोई अपेक्षा है हीं नहीं । आप देकहिये कि अभ्यास में मन लग जाता है, पर जब ध्यान के बाद आंख खुलती है तो हम दुनिया के व्यवहार में आते हैं तो कभी हमें स्वयं गुस्सा आ जाता है तो कभी कोई हमे गुस्सा दिला देता है । हमारा जो ज्ञान क्षण भर पहले था, खत्म हो जाता है । उसके अनुसार अभी जीवन नहीं बना । अनुभूति भी हो जाती है परंतु हमारा जीवन उसके अनुसार नहीं बनता है । भगवान ने धीरे धीरे अर्जुन को मोह से मुक्त कराया है और कहा है कि तू वीर है । वीर का मतलब यह नहीं कि तू क्षत्रिय कुल में पैदा हुआ है, तू तो ईश्वर की सन्तान है, वीरता तुम्हारा प्रतीक है, धर्म, ज्ञान यह तो तुम्हारी वृत्तियां हैं ।

सभी आत्मा है, भगवान की रासलीला है । किसी को कोई ड्यूटी दे दी है किसी को कोई ड्यूटी दी है । वास्तव में दोनों एक ही हैं । जैसे एक महापुरुष ने लिखा है कि फौज में जब रिक्रूट (recruit) किए जाते हैं, ट्रेनिंग के लिए तब जो जनरल होता है वह अपनी फौज को लड़ाई का ढंग सिखाने के लिए दो हिस्सों में बांट देता है । होती तो एक ही फौज है, कोई दुश्मन नहीं है, सब अपने ही आदमी हैं परंतु लड़ाई कैसे लड़ी जाती है यह उन्होंने उदाहरण दिया है कि हमारा जीवन किस प्रकार का हो । वास्तव में हम सभी एक ही है मगर समझ नहीं है । तो आपस में वो लड़ते हैं, लड़ाई का ढंग सीखते हैं । इसी प्रकार परमात्मा ने भी, आत्मा तो एक ही है परन्तु विभिन्न शरीरों में रहने के कारण सबका दायित्व अलहदा अलहदा कर दिया । परंतु अज्ञान के कारण हमें इसकी समझ नहीं आती । यदि गुरु कृपा यानी ईश्वर की कृपा हो जाए तो यह रहस्य समझ में आ जाता है कि वास्तव में आप और परमात्मा एक है । कौन लड़ता है, कौन मरता है । अब प्रभु ने यह दायित्व दिया है तो यह तो सेवा है । भगवान ने गीता में यह स्पष्ट किया है कि अगर लड़ाई भी लड़नी है तो वह भी निष्काम भाव से, सेवा के रूप में लड़नी है । अपना स्वार्थ रखकर नहीं, मन में शत्रुता रखकर नहीं । आप कहेंगे कि यह तो अलंकार है, जैसे कवि लोग कविता में कह देते हैं । नहीं, यह वास्तविकता है । जब तक प्रभु का यह रहस्य समझ नहीं आता है तब तक हमारी साधना सफल नहीं हो सकती । यही साधना करनी है कि ईश्वर के रहस्य को समझे और उसके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें । सदन कसाई है, परन्तु वे ईश्वर के साथ तदरूप होते हैं । कसाई का काम करते हैं

परन्तु वह उस काम में कोई दोष नहीं देखते हैं हम दोष देखते हैं क्यों ? हमारी वह स्थिति नहीं है ।

यह तो पुराने युग की बात है । नये युग की बात बतलाता हूँ । गुरु गिविंद सिंह जी थे । लड़ाई लड़ते थे । ईश्वर ने प्रेरणा दी थी । आपको पूर्वजन्म में (बदरीनाथ के निकट हेमकुंड है वहां) प्रेरणा हुई और पटना में उनका जन्म हुआ । आप लड़ाई में क्या करते थे ? इनके प्रतीक तीर के साथ डेढ़ तोला सोना लगा रहता था । जिसकी मृत्यु उस तीर के लगने से होती थी, उसकी क्रिया उस सोने को बेचकर होती थी । यानि किसी के साथ बैर नहीं था ईश्वर की इच्छा थी, ईश्वर का आदेश था, उसका पालन करने के लिए । आपने ये सब लडाई लड़ी । आप कहेंगे " यह कैसे " ? उन के एक सेवक थे । जैसे कि आजकल रेड क्रॉस सोसायटी है उसी तरह वे सब घायलों की मरहम पट्टी किया करते थे । सेवकों ने शिकायत की कि गुरुदेव एक सी० आई० डी० का आदमी है, हमारे शत्रुओं से मिला हुआ है, उनके घायलों की मरहमपट्टी करता है । गुरुदेव ने कहा उनको बुलाईये, जब वे आये तो सेवकों से गुरुदेव ने कहा कहिये आप क्या कहते हैं ? सेवकों ने सारी बात कही । उनका नाम कन्हैया जी था । गुरुदेव ने उनसे पूछा कि आप कहिये क्या बात है, ये लोग जो कह रहे थे क्या ठीक है ?उ न्होंने कहा "गुरुदेव, मुझे क्षमा करें, मुझे तो पता हीं नहीं कि मैं किसी का मरहम पट्टी करता हूँ । किसकी सेवा करता हूँ ? मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं तो आपकी हीं सेवा करता हूँ ?" उस लड़ाई के स्थान पर ही सब कुछ हो रहा है । सेवक सुनकर हैरान हो गए । यह तो उनका अहंकार था । गुरुदेव ने कहा "लड़ाई लड़ना कोई हमारा काम थोड़े ही है । ये तो ईश्वर की इच्छा के वश में हम ऐसा कर रहे हैं । उसकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं, और आपके सामने, देखिए यह महान व्यक्ति खड़ा है ।" कन्हैया जी को गुरु की पदवी दी है और उनको आज्ञा दी है कि आप अपना पन्थ या संप्रदाय अलहदा चलाइए । उनका स्थान अब भी है । उनके संप्रदाय का नाम 'सेवा पंथी' है । निर्मल संत कहलाते हैं । गुरु महाराज ने इन लोगों को बनारस में पढ़ाया था । गुरु महाराज को बड़ा शौक था अपने सेवकों को पढ़ाने का । ये लोग अब भी पंडित कहलाते हैं, और कन्हैया जी के समय के ही वे पंडित हैं । ये वेदो व शास्त्रों के महान पंडित होते हैं । यह और लोगों की तरह राजनीति में नहीं पड़ते । अब भी इन लोगों में बड़े उच्च कोटि के विद्वान हैं ।

तो कहने का मतलब यह है कि ईश्वर का जो रहस्य है कुछ ही आदमी समझ पाते हैं । इसी स्थल पर भगवान की रासलीला होती थी । रास लीला यही है कि भगवान अपने रूप के साथ ही क्रीडा कर रहे हैं । भगवान अपनी शक्ति श्री राधा जी के साथ रास लीला कर रहे हैं । भगवान का महत्व तो है ही परंतु इस धरती पर राधाजी का अधिक महत्व रहा है । अब भी जाओ वृंदावन में राधे राधे ही सब कहते हैं । रिक्शे वाले क्या दूसरे क्या-- किसी को चेतावनी दी तो 'राधे राधे' उच्चारण करते हैं । राधा जी ने भगवान के रहस्य को जानकर वैसा ही जीवन जी कर इस धरती पर लोगों को जीना सिखाया । गुरु गोविंद सिंह जी में इतनी महानता भले ही न हो जितनी कन्हैया जी की महानता है । उसने तो जीवन जीकर दिखाया । तो साधना में जीवन जीने का नाम है । इसी को राजी-ब-रज़ा (यथा लाभ संतोष) कहते हैं । "जाहीं विधि राखे राम ता हिं विधि रहिये" । जबरदस्ती नहीं रासलीला समझकर, कबीर साहब कहते हैं कि मुझे तो खुली आँखों से भगवान के लिए लीला नजर आती है । गुरु नानकदेव कहते हैं कि कोई साधना सफल ही नहीं हो सकती जब तक कि हम ईश्वर की रजा को नहीं समझेंगे और उसके अनुसार नहीं चलेंगे । केवल बुद्धि से ही समझ लेना काफी नहीं है शिवनेत्र खुलना चाहिए, उसका रासलीला के दर्शन होने चाहिए और हमें उसकी रासलीला में सम्मिलित होकर निष्काम भाव से गीता के उपदेश के अनुसार संसार की सेवा करनी चाहिए ।

अंतिम उपदेश भगवान का यह की आसक्ति न हो । सब कर्म करते रहिये, है ही भगवान का, भगवान के प्रसन्नता के लिए कर रहे हैं, कोई आसक्ति नहीं है । जहां आसक्ति होगी संस्कार बन जाएगा । जड़ भरत जी की तरह एक मृग के बच्चे की सेवा करने से तीन जन्म लेने पड़े क्योंकि उस सेवा में मोह जनित संस्कार बन गया था । आप कहेंगे कि विधाता का यह कैसा विधान है ? यह विधान सही है । नहीं तो भगवान को इतना अर्जुन को समझाने की जरूरत ही क्या थी, उपनिषदों वेदों और पुराणों की जरूरत ही क्या थी ? आत्मा निर्मल हो जाए । गंगा के निर्मल प्रवाह की तरह हो जाए । कोई बुरा आदमी स्नान करता है तो कोई परवाह नहीं, संत स्नान करते हैं तो गंगा को कोई चिंता नहीं । वो तो अपनी परवाह में शांति प्रदान कर रही है । निकलती कहाँ से है--भगवान शिव के चरणों से । भगवान शिव कौन है ? परमात्मा । गंगा उनकी शक्ति है । उस शक्ति में तो शांति, निर्मलता, सत-चित्त-आनंद सब गुण हैं परन्तु हम ही उस निर्मल जल को, गंगा के प्रवाह से निकाल कर गंदा कर देते हैं । यह मन कर रूप है । साधना यही है कि इस मलीनता को धोकर, शुद्ध होकर गंगा के प्रवाह में

पुनः सम्मिलित हों । वो वही सुहागन हैं, वही जिज्ञासू हैं जो परमपिता के चरणों में नितांत लिपटा रहता है ।

'नानक सदा सुहागिन जिन जोती जोत सामानी'

जोती यानि निर्लेप आत्मा परमात्मा में समाना ही सदा सुहागिन होना है ।

स्वामी राम कृष्ण परम हंस जी के शिष्य स्वामी ब्रिजकृष्ण जी ने कई पुस्तकें लिखी हैं । उनमें से एक श्री राधा जी के नाम के ऊपर है । वे ब्रिज के प्रत्येक वृक्ष के पत्तों पर राधा जी का नाम अंकित देखते थे । जो सच्चे भक्त हैं उनको ही दीखते है । वह अयोध्या में एक महापुरुष हैं (परमहंस बाबा राम मंगल दास जी महाराज) उन्होंने दर्शन दिए किये हैं, वे अब भी विराजमान हैं । यह कोई गलत बात नहीं है, सुनी सुनाई बात नहीं है । परन्तु हमारी आँखें ही नहीं है । हमारे भीतर में शुद्धता नहीं है । भगवान कृष्ण के पवित्र जन्म भूमि में रहते हुए, उनकी कृपा से वंचित है । उनके प्रेम के आकर्षण से हम खींचे नहीं जा रहे हैं । जैसे गोपियां खिंची चली जाती थी । वही धरती है, बदली नहीं है, परन्तु हमारे दिल में गोपियों जैसा प्रेम नहीं है, व्याकुलता नहीं है । भगवान कृष्ण की बांसुरी अब भी बजती है । हम तो देश के इसी हिस्से के रहने वाले हैं । कर्नाटक के संतों ने इस बांसुरी की आवाज पर बहुत कुछ लिखा है । इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के चांसलर हुए हैं डा० रेनल्ड । वे बड़े मशहूर संत हुए हैं । कर्नाटक के रहने वाले थे । उन्होंने अपनी पुस्तक में वर्णन किया है वहां के संतों की वाणी का । क्या क्या अनुभव होते हैं यह उन्होंने लिखा है । नींव जो उन्होंने लिखी है वह निर्मलता की है, शुद्ध आचरण की है, चाहे भक्ति का साधन करें चाहे ज्ञान का साधन करें । मन और बुद्धि को मिलाने का नाम ही परमार्थ है । उन्होंने लिखा है कि पहले प्रकाश का अनुभव होता है । प्रकाश के या भगवान शिव के तीन रूप उन्होंने लिखे हैं । लिंग का जो पूजा करता है यह आज्ञा चक्र पर जो प्रकाश ललाट हैं तीन तिलक लगाते हैं यह प्रतीक है उनका । यह चंदन जो लगाते हैं शांति का प्रतीक है ।

इलाहाबाद गए थे तो गंगा जी के दूसरे तट पर एक मंदिर बना हुआ है । गुरु महाराज (परमसंत कृष्ण लाल जी महाराज) हमारे साथ थे । वहां आंतरिक चक्रों की एक मूर्ति बनी हुई थी । बड़ी मूर्ति है । तो गुरुदेव ने यहां तीन किस्म के भगवान शिव के रूप बताये । पहला रूप तो प्रकाश का है । जिस लिंग की हम पूजा करते हैं यह पूरा ललाट हैं शिव भगवान का । इसके बाद सत् है । उस महान संत फिलासफर ने लिखा है कि भगवान के जिस रूप

की पूजा करते हैं । गुरु की, शिव की, कृष्ण भगवान की, जिस रूप की पूजा करते है, यही विश्वास भगवान कृष्ण ने गीता में दिया है, कि जिस तरह भी आप पूजा करते हैं वह मेरे को ही लगेगी यानि उस रूप के दर्शन होते हैं साक्षात और जो आदेश आप उनसे मांगे मिलते है । स्वप्नावस्था में, भी खुली आंखों भी आदेश मिलते हैं । तीसरा रूप उन्होंने बताया 'निर्मलता' जैसा कि मैंने अभी निवेदन किया, गंगा जैसी निर्मलता की स्वयं में स्थित रहकर वह सारे विश्व को निर्मल करती हैं, अप्रयास ही । यह संत का जीवन है । वो जहां बैठेगी वही गंगा है, वहां तीर्थ है । उसको कुछ करना नहीं पडता । स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्ति के पास जो बैठेगा उसको शांति मिलेगी । और धीरे धीरे उसके भीतर भी निर्मलता आ जाएगी । संतमत में इसका ही महत्व है । ईश्वर कृपा से यदि कोई ऐसा संत मिल जाता है जाए तो विशेष परिश्रम करने की जरूरत नहीं है । ऐसे व्यक्ति के पास बैठे, ऐसे व्यक्ति का संग करे । ऐसे व्यक्ति के पास बैठने का अवसर मिल जाए तो एक कल्प के घोर तपस्या से कहीं अच्छा है । ऐसे ही संत के संग के शास्त्रों में या अन्य साहित्य में महिमा गाई है । वो तो ईश्वर बन जाता है । ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए संसार का उद्धार करता है । महर्षि रमन से कहा गया कि आप यहीं आश्रम में बैठे रहते हैं, आप क्यों नहीं मंच पर आते, क्यों नहीं स्थान स्थान पर जाते, क्यों नहीं लोगों में प्रवचन देते और लोगों का उधार क्यों नहीं करते ? उनका उत्तर था–"आप क्या समझते हैं ? क्या यहां मौन में बैठे हुए मैं संसार का उद्धार नहीं करता ? सूरज जब आसमान में चढ़ता है तो क्या उसको प्रकाश देने के लिए कहीं जाना पड़ता है ? उसका प्रकाश तो सबको ही मिलता है ।" दोष हमारा है कि हम अपने मकान को खिड़की नहीं खोलते । खिड़की खुली रहेगी तो प्रकाश भी अंदर आएगा । खिड़की बंद कर लेते हैं प्रकाश से वंचित हो जाते हैं । इसी प्रकार संत ईश्वर समान है । जैसे उनकी प्रगति होती है वैसे उनकी किरणें दूर जाती हैं, Vibration (तरंगें) दूर तक जाती है । यह तो एक वैज्ञानिक बात है । मुसलमानों में कहते हुए गाँव या शहर का एक 'कुतुब' (संत) होता है, वह उस जगह की देखभाल करता है । मुसलमानों में कहते हैं कि एक गाँव या शहर का एक कुतुब होता है वह उस जगह की देखभाल करता है । इस बात को संत लोग (हमारे यहां भी) मानते हैं । ईश्वर की ओर से संत की ड्यूटी लगी होती है कि वे जहां रहते हैं वहां का देखभाल करते रहें । गुरु महाराज कहा करते थे कि कभी कभी साधना में ऐसे व्यक्तियों की कृपा का अनुभव होता है ।

* सागर के मोती *

आप अपने मित्र की स्मृति करें तो उसका स्वरूप उसके गुण आपकी आँखों के सामने आ जाते हैं, आपके हृदय में समा जाते है । तो क्या एक मित्र की तरह भी हम ईश्वर का स्मरण नहीं कर सकते ?

* * * * * * * * * * * *

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह बुढा हो, स्त्री, बच्चा , कोई भी हो उसे कोशिश करनी चाहिए कि उसका शरीर स्वस्थ रहे । स्वस्थ शरीर हीं साधना कर सकता है ।

* * * * * * * * * * * *

जिसका शरीर स्वस्थ नहीं उसका मन भी रोगी होता है ।

* * * * * * * * * * * *

संतोष होना चाहिए । प्रयास करने के पश्चात भी यदि इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती तो ईश्वर की गति में अपनी गति मिला देनी चाहिए ।

* * * * * * * * * * * *

यदि किसी साधना करने के पश्चात आपके भीतर में दैवी गुण उत्पन्न नहीं होते तो आपकी साधना में खिन कमजोरी है ।

* * * * * * * * * * * *